सुवर्णपुरीके श्री सीमंधरस्वामी जिनमंदिरकी दिवारोंके चित्र पर आधारित

# जैन पौराणिक लघुकथाएँ

## भाग-२

प्रकाशक
श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट
सोनगढ-३६४२५० (सौराष्ट्र)

## सुवर्णपुरीके श्री सीमंधरस्वामी दिगम्बर जिनमंदिरका

# गर्भगृह

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - 364250

भगवानश्रीकुन्दकुन्द-कहानजैनशास्त्रमाला, पुष्प-२३१

ॐ

नमः सद्गुरुवे ।

सुवर्णपुरीके श्री सीमंधरस्वामी जिनमंदिरकी दीवारोंके चित्रों पर आधारित

# जैन पौराणिक लघुकथाएँ

## (भाग-२)

: प्रकाशक :

**श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट,**

सोनगढ़-364 250

website :www.kanjiswami.org

Email : contact@kanjiswami.org

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - 364250

प्रथम आवृत्ति प्रत : २००० वि. सं. २०६८ ई.स. २०११

जैन पौराणिक लघुकथाएँ (हिन्दी) भाग-२के

**स्थायी प्रकाशन पुरस्कर्ता**

श्री आदिनाथ कुन्दकुन्दकहान दिगम्बर जैन मुमुक्षु मंडल

खंडवा (म.प्र.)

यह पुस्तकका लागत मूल्य रु. 59=00 है। मुमुक्षुओंकी आर्थिक सहायतासे इस आवृत्तिकी किंमत रु. 30=00 रखी गई है।

मूल्य : रु. 30=00

मुद्रक :

कहान मुद्रणालय

सोनगढ-३६४२५० (सौराष्ट्र)

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - 364250

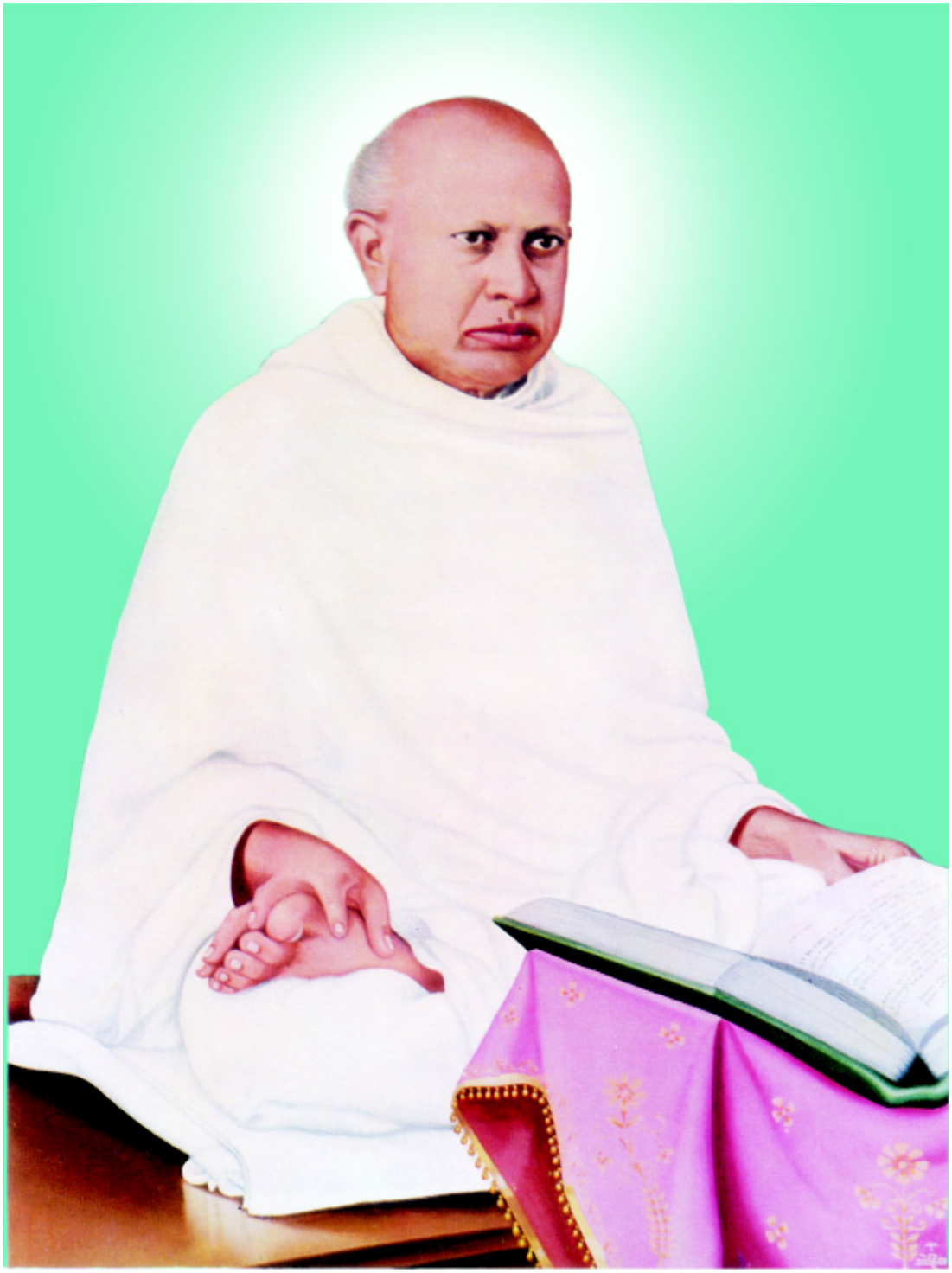

પરમ પૂજ્ય અધ્યાત્મમૂર્તિ સદ્‌ગુરુદેવ શ્રી કાનજીસ્વામી

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

# प्रकाशकीय निवेदन

परमोपकारी अध्यात्मयुगस्त्रष्टा, आत्मानुभवी सत्पुरुष पूज्य सद्गुरुदेवश्री कानजीस्वामीने अपनी अनुभवरससे आर्द्र वाणीमें जिनेन्द्रकथित चारों अनुयोगके सुमेलपूर्वक अध्यात्मरसगर्भित द्रव्यदृष्टिकी मुख्यतासे उपदेशगंगा बहाई; जिसमें स्नान करके भरतक्षेत्रके हजारों भव्य जीव अपना आत्महित साधनेको उत्सुक बने; जिसके कारण सोनगढ़ एक अध्यात्म अतिशयक्षेत्र सुवर्णपुरीके रूपमें विश्वप्रसिद्ध तीर्थधाम बन गया। पूज्य गुरुदेवश्रीके प्रभावना उदयसे सुवर्णपुरीमें स्वाध्यायमंदिर, जिनमंदिर, समवसरण मंदिर, मानस्तंभ, प्रवचनमंडप, परमागममंदिर, नंदीश्वर जिनालय आदि भव्य जिनायतनोंकी रचना हुई। पूज्य गुरुदेवश्रीकी अनन्य भक्त, स्वानुभवविभूषित, पूज्य बहिनश्री चंपाबेनको मुनि भगवंतों व महापुरुषोंके जीवनसे बहुत लगाव था । अतः वे अपने जीवनमें संवेग-वैराग्यभावको वृद्धिगंत करती थीं । वे सभीको महिलासभामें भी महापुरुषों व सतीयोंके जीवनके प्रसंग बहुत आर्द्रभावसे बताती थीं । उन प्रसंगोंमेंसे कई प्रसंग कि जिनमें मुनि भगवंतोंके मार्गका आत्मार्थीयोंको महत्त्व आये उन पर उक्त आयतनोंमें मुख्यरूपसे अपने प्रथमानुयोगके शास्त्रज्ञानके आधारसे विविध पौराणिक चित्र उत्कीर्ण एवं चित्रांकित कराए। निर्ग्रंथ मुनि भगवंतोंके दर्शन हो ऐसे दृश्य इन चित्रोंमें उन्होंने लिए हैं, जिसमें उनकी संवेगादि भावनाओंसे आयतनोंके शोभा बढ़ गई, एवं इन आयतनोंका दर्शन करनेवाले भाविकजनोंको विविध पुराण आधारित कथाओंसे अपनी संवेगादि भावनाओंको वृद्धि करनेका लाभ प्राप्त होता है।

कुछ मुमुक्षुओंकी भावनाको लक्ष्यमें लेकर सोनगढ़से प्रकाशित हिन्दी आत्मधर्ममें पूज्य बहिनश्रीके अंतरमें वर्तती वीतरागी महापुरुषोंके प्रति आदर, श्रद्धा, भक्ति आदिको देखकर, मुमुक्षुओंको अंतरमें भी ऐसे ही भाव जागृत हो इस हेतुसे इन चित्रोंके आधारसे आचार्यदेवरचित पुराणोंमेंसे बालविभागमें कथाएँ लिखना प्रारंभ किया गया था। भव्य साधकजीवोंकी ये कथाएँ पढ़नेसे कुछ मुमुक्षुओंने ये कथाएँ पुस्तकके रूपमें प्रकाशित करनेकी मांग की थी। जिसके फलस्वरूप सुवर्णपुरीके स्वाध्यायमंदिरमें आलेखित सात चित्रोंकी सात कथाओंका ''जैन पौराणिक लघुकथाएँ भाग–1'' नामक रंगीन सचित्र पुस्तक पूर्व प्रकाशित किया गया था। उसी भाँति इस बार श्री सीमंधरस्वामी जिनमंदिरमें अंकित पौराणिक चित्रोंके आधारसे ''जैन पौराणिक लघु कथाएँ भाग-2'' नामक रंगीन पुस्तक प्रकाशित किया जाता है। आगे अन्य मंदिरोंमें आलेखित चित्रोंके आधारसे कथाओंके ऐसे ही पुस्तक भी प्रकाशित करनेकी श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ़की भावना है।

इस पुस्तकमें आवश्यकताके अनुरूप मूल कथाकी हकीकत एवं हार्दको यथावत रखकर भाषामें सामान्य सुधार किए हैं। यह पौराणिक कथाका पुस्तक होनेसे आयतनोंमेंसे पूज्य गुरुदेवश्रीके चित्रोंका समावेश नहीं किया है। आयतनोंमेंसे पूज्य गुरुदेवश्रीके चित्रोंको संकलित कर उनके जीवनके बारेमें एक सचित्र पुस्तक करनेकी भी ट्रस्टकी योजना है।

यह पुस्तक तैयार करनेमें बा.ब्र. श्री व्रजलालभाई शाह(वढ़वाण)ने उपयोगी मार्गदर्शन दिया है, अतः हम अंतरसे उनके आभारी हैं। इस पुस्तकके सुंदर चित्र श्री जयदेवभाई अग्रावतने बनाये हैं एवं पुस्तकका मुद्रण कहान मुद्रणालय द्वारा किया गया है।

इस पुस्तकमें कथायें जिनमंदिरमें आलेखित चित्रोंके दृश्योंकी स्पष्टता संक्षिप्त स्वरूपमें ही दी गई हैं। विशेष अभ्यासके लिये जिज्ञासुओंको जैनधर्मके प्रथमानुयोगका अभ्यास करना आवश्यक है। आशा है कि मुमुक्षु समाजको यह सचित्र पुस्तक महापुरुषोंके प्रति अपनी भावनामय भक्ति, आदररूप सहज जीवन गढ़नेमें कार्यकारी होगा।

'श्री सीमंधरस्वामी प्रतिष्ठा मासिक दिन'
11वीं बाल संस्कार शिबिर,
सोनगढ़-(सौराष्ट्र)
ता. 26-12-2011

साहित्यप्रकाशनसमिति
**श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट,**
सोनगढ-३६४२५० (सौराष्ट्र)

# अनुक्रमणिका


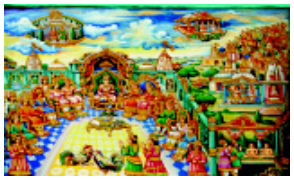

भगवान शान्तिनाथका
पूर्वभव मेघरथकुमार
Page-11

भगवान महावीर
Page-30

ऋद्धिवंत मुनि भगवंतों
Page-37

भगवान नमिनाथका वैराग्य
Page-45

ऋषभदेवको पूर्वभवमें
सम्यक्त्वकी प्राप्ति
Page-54

जम्बूस्वामीका पूर्वभव
राजकुंवर शिवकुमार
Page-60

देवकीके भव्य पुत्र
Page-66

ज्ञानीओंके द्वारा
देव-गुरुकी भक्ति
Page-84

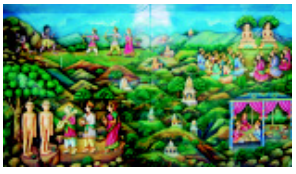

सीमंधर भगवानका
तपकल्याणक महोत्सव
Page-97

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - 364250

પ્રશમમૂર્તિ ભગવતી પૂજ્ય બહેનશ્રી ચંપાબેન

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

# श्री सीमंधर भगवान-स्तवन

(श्री सीमंधरस्वामी जिनमंदिरकी प्रतिष्ठाके समय पंडित श्री हिम्मतलाल जे. शाह द्वारा रचित)

(राग : गाजे पाटणपुरमां)

सुंदर स्वर्णपुरीमां स्वर्ण-रवि आजे ऊग्यो रे,
भव्यजनोना हैये हर्षानंद अपार,
श्री सीमंधर प्रभुजी पधार्या छे अम आंगणे रे.....१

(वसंततिलका)

निर्मूळ मोह करीने प्रभु निर्विकारी,
छे द्रव्यभाव सहुना परिपूर्ण साक्षी;
कोटि सुधांशु करतां वधु आत्मशान्ति,
कोटि रवीन्द्र करतां वधु ज्ञानज्योति.

जेनी मुद्रा जोतां आत्मस्वरूप लखाय छे रे,
जेनी भक्तिथी चारित्रविमळता थाय,
अेवा चैतन्यमूर्ति प्रभुजी अहो ! अम आंगणे रे. सुंदर० २

'सद्धर्मवृद्धि वर्तो' जयनाद बोल्या,
श्री कुन्दना विरहताप प्रभु निवार्या;
सप्ताह एक वरसी अद्भुत धारा,
श्री कुन्दकुन्द हृदये परितोष पाम्या.

जेनी वाणी झीली कुन्दप्रभु शास्त्रो रच्यां रे,
जेनी वाणीनो वळी सद्गुरु पर उपकार,
अेवा त्रण भुवनना नाथ अहो ! अम आंगणे रे. सुंदर० ३

पूर्वज्ञ छे गणधरो प्रभुपादपद्मे;
सर्वज्ञ केवळी घणा प्रभुना निमित्ते;
आत्मज्ञ संतगणना हृदयेश स्वामी,
सीमंधरा ! नमुं तने शिर नामी नामी.

जेना द्वारा जिनजी आव्या, भव्ये ओळख्या रे,
ते श्री का'नगुरुनो पण अनुपम उपकार,
नित्ये देव-गुरुनां चरणकमल हृदये वसो रे. सुंदर० ४

## ❀ भरतक्षेत्रमें सीमंधरयुग ❀

वि.सं. 1997 (ई.स. 1941)में प्रतिष्ठित

पूज्य गुरुदेवश्रीके तथा पूज्य बहिनश्रीके सौराष्ट्रदेशके गाँवोंमें विहारके समय गिरनारमें उछली हुयी जिनेन्द्रभक्तिके बाद सुवर्णपुरीमें श्री जिनेन्द्रभगवंतोके पधारनेके मंगल चिह्न प्रारंभ हो गए। श्री नानालालभाई आदि जसाणी भाईओंकी ओरसे विदेहीनाथ श्री सीमंधर भगवानके नूतन भव्य जिनमंदिरकी रचना प्रारंभ हुई। वि. सं. १९९३ (ई. स. १९३७) से पूज्य बहिनश्रीके जातिस्मरणज्ञानके द्वारा भक्तोंके हृदयमंदिरमें श्री सीमंधरनाथ महिमा भावरूपसे तो बिराजित हो गए थे, फिर भी गत पूर्वभवमें प्राप्त विदेहीनाथके समवसरणमें दिव्यध्वनिके श्रवणरूप पवित्र समागम, दिव्यध्वनिमें आए हुए पूज्य गुरुदेवश्रीके भूत और भविष्यके भवोंका वृतांत इत्यादि अन्य उपकारोंके अहोभावसे, नूतन दिगंबर जिनमंदिरमें मूलनायकरूपमें सीमंधर भगवानकी मंगल प्रतिष्ठा वि. सं. ९९९७ (ई. स. १९४१) फाल्गुन शुक्ला द्वितीया, शुक्रवारके शुभदिन हुई। अहा! तब ही से अपने इस भरतक्षेत्रमें श्री सीमंधरस्वामीके मंगल युगका प्रारंभ हुआ। श्री सीमंधरप्रभुके प्रति पूज्य गुरुदेवश्रीको अपार भक्तिभाव था। कभी कभी सीमंधरनाथके विरहमें परम भक्तिवंत पूज्य गुरुदेवश्रीके नेत्रोंसे अश्रुकी धारा बहती थी।

प्रतिष्ठा महोत्सवके आठों दिन पूज्य गुरुदेवश्रीके मुखारविंदसे भक्तिरसभीगी जो अलौकिक वाणी छूटती थी–भक्तिरसका जो अपूर्व प्रपात गिरता था–उसका आश्चर्यमुग्ध अहोभाव तो श्रोताओंके मनोमंदिरमें उत्कीर्ण हो ही गया था। भूले हुए, सीमंधर भगवानके (स्थापना अपेक्षा ही सही) मिलन से पूज्य गुरुदेवश्रीको कोई असाधारण आनंदोत्साह था। प्रतिष्ठाके पहले श्री सीमंधरनाथकी प्रतिमाके प्रथम दर्शनसे पूज्य गुरुदेवश्रीकी आँखोंमेंसे विरहवेदनाके अश्रु बहने लगे थे। अभी प्रतिष्ठा नहीं हुई थी फिर भी पूज्य गुरुदेवश्री सीमंधर भगवानकी प्रतिमाके समीप बैठकर प्रभुकी उपशमरसभरी मुद्रा निहारकर अति भक्तिभावसे गाते थे

अमीयभरी मूरति रची रे, उपमा न घटे कोई
शांत सुधारस झिलती रे निरखत तृप्ति न होय,
सीमंधर जिन! देखे लोचन आज, मेरे सिद्ध हुए सब कार्य,
सीमंधर जिन! देखे लोचन आज।

मंदिरमें सीमंधरनाथके मंगल प्रवेशके समय पूज्य गुरुदेवश्रीको भक्तिरसकी इतनी प्रचुरता हो गई कि उनका पूरा देह भक्तिरसके मूर्त्तस्वरूप जैसा शांत–शांत लगने लगा। पूज्य गुरुदेवश्रीके द्वारा साष्टांग प्रणाम हो गए एवं भक्तिरसकी एकाग्रताके कारण देह ऐसे ही कुछ क्षणोंके लिए निश्चेष्टरूप पड़ा रहा। भक्तिका यह अद्‌भुत पावन दृश्य पासमें खड़े मुमुक्षुओंको सहा नहीं जाता था। उनके नेत्रोमें अश्रु उभर आए और चित्तमें भक्ति उमड़ी। पूज्य गुरुदेवश्री भक्तिभावमें मानों देहका भान भूल गए हों, ऐसे अपूर्व भावसे अपने पवित्र हस्तसे प्रतिष्ठा की। जिनेन्द्रदेवके मंगल आगमन होनेसे, दोपहर प्रवचनके बाद पूज्य गुरुदेवश्रीकी उपस्थितिमें जिनमंदिरके भीतर नितप्रति ४५ मिनिटों तक भक्ति होती थी। प्रवचन सुनते हुए आत्माके एवं मोक्षमार्गके मूल उपदेशक वीतराग जिनेन्द्र भगवानका महात्म्य हृदयमें स्फूरित होता था। इससे तुरंत ही जिनमंदिरमें भक्ति करते हुए वीतरागदेवके प्रति पात्र जीवोंको अद्‌भुत भक्तिभाव उल्लसता था। इस तरह जिनमंदिरमें ज्ञान और भक्तिका सुंदर संगम बना।

## ❀ जिनमंदिरका विस्तृतिकरण ❀

प्रतिदिन वृद्धिगत होनेवाले पूज्य गुरुदेवश्रीके प्रभावना योगसे भारतके जिज्ञासुओंका सोनगढ़में आना-जाना बहुत बढ़ता चला। दर्शन-पूजन भक्तिके लिए जिनमंदिर छोटा पड़ने लगा। इसलिए उसका विस्तृतिकरण हेतु वि. सं. २०१२ (ई. स. १९५५)के कार्तिक शुक्ला पंचमीको पूज्य गुरुदेवश्रीके मंगल हस्तसे इंटों पर स्वस्तिक अंकित कराकर आनंदोल्लासपूर्वक शिलान्यास हुआ। विस्तृतिकरण हुए भव्य जिनमंदिरके ऊपरके भागमें श्री नेमिनाथ भगवानकी पुनः वेदीप्रतिष्ठा वि. सं. २०१३ (ई. स. १९५६) कार्तिक शुक्ला द्वादशीके शुभ दिन हुई। पूज्य गुरुदेवश्रीकी तत्कालीन उम्रके उपलक्ष्यमें ६८ फुट उन्नत जिनमंदिरके शिखर पर कलश एवं ध्वजाकी भव्यता ऐसी शोभित थी, मानो पूज्य गुरुदेवश्रीका विश्वचुंबी प्रभावना उदय लहराता हो। उसमें मुख्यरूपसे पूज्य बहिनश्रीने अपनी भावनासे चित्र चित्रांकन करवाये थे। उनमेंसे पौराणिक कथाओंके सम्बन्धित यह पुस्तक है । जो अपनी आत्मार्थिताको संवेग व वैराग्यमय बनाये ऐसी भावनाके साथ।

## भगवान शान्तिनाथका पूर्वभव

# मेघरथकुमार

मेघरथकुमारके पिता तीर्थंकर घनरथकुमार थे। प्रथम उनका कथन कर पश्चात् मेघरथकुमारका वर्णन करेंगे।

जम्बूवृक्षसे सुशोभित ऐसे जम्बूद्वीपके पूर्वविदेहक्षेत्रमें पुष्कलावती नामका एक देश है। तीन ज्ञानको धारण करनेवाले देव भी मोक्षपद पानेके लिए उस देशमें जन्म लेनेको लालायित रहते हैं। उस देशमें धर्मपिपासु भव्यजीवोंको धर्मोपदेश देनेके लिए एवं तीर्थयात्रा करनेके लिए धीर-वीर दयालु मुनि सदा विहार करते रहते हैं। उस देशमें जिनालयके अतिरिक्त न ग्राम थे, न खेट थे, न द्वीप थे, न शहर थे, न नगर थे एवं न पट्टन ही थे। वहाँ पर भोगोपभोगोंसे परिपूर्ण पुण्यशाली अनेक शलाका पुरुष उत्पन्न होते हैं, जिन्हें देव, मनुष्य सब नमस्कार करते हैं। हँस आदि उत्तम पक्षियोंसे शोभायमान एवं निर्मल जलसे भरे हुए मनोहर तालाब, बावडी, नदी एवं कुँआँ आदि चारों दिशाओंमें शोभायमान है। वृक्षोंके नीचे ध्यान धारण किये हुए मुनिराज विराजमान हैं जो दूसरे कल्पवृक्षके समान जान पड़ते हैं। वहाँ पर स्थान-स्थान पर देव, विद्याधर एवं भूमिगोचरी मनुष्योंके द्वारा पूज्य तीर्थङ्कर एवं गणधरोंकी उत्तम निर्वाण-भूमियाँ विद्यमान हैं। वहाँ पर श्री जिनेन्द्रदेवका कहा हुआ आदि-अन्त-रहित, हिंसा से रहित, सब जीवोंका हित करनेवाला धर्म सदा विद्यमान रहता है। जिसप्रकार शरीरके मध्यभागमें नाभि रहती है, उसी प्रकार ऊपर लिखे गुणोंसे परिपूर्ण देशके मध्यभागमें, पुण्डरीकिणी नामकी शुभ-नगरी है।

वह नगरी सोने व रत्नोंके बने हुए शाश्वत कोट एवं उसके ऊँचे दरवाजोंसे सदा शोभायमान रहती है। धर्मात्मा स्त्री-पुरुषोंसे इस भरे हुए नगरमें धर्मके उपकरण तथा सोने व माणिक आदिकी बनी हुई अनेक प्रकारकी श्री जिनेन्द्रदेवकी प्रतिमा सुशोभित हैं, देव भी उन जिनबिंबोंकी सेवा करते हैं, अनेक प्रकारके शोभासे वे शोभायमान हैं एवं गीत, नृत्य, बाजे तथा स्तुतिके अविराम शब्दोंसे सदा शोभायमान रहते हैं। वहाँ पर केवल पुण्यवान मनुष्य ही अपने सञ्चित पुण्यका फल भोगनेके लिए श्रेष्ठ कुलोंमें उत्पन्न होते हैं, पापी लोग वहाँपर कभी उत्पन्न नहीं होते। कितने ही पुण्यवान लोग अनेक प्रकारके भोग भोगते हुए भी दान, पूजा, तप एवं व्रतोंका पालन कर महापुण्य उपार्जन करते हैं। इस नगरीमें अनेक तीर्थंकर, गणधर, केवलज्ञानी तथा धीर-वीर चरम-शरीरी मुनि उत्पन्न होते रहते हैं, जिनकी चक्रवर्ती तथा विद्याधर पूजा करते हैं। इस प्रकार अनेकगुणोंसे भरी हुई उस नगरीमें अनेक राजाओंके शिरोमणि घनरथ नामके तीर्थंकर राज्य करते थे। उनके जन्म होनेके पहिले ही उनके पिताके गृह-प्रांगणमें कुबेरने पंद्रह महीने तक रत्नोंकी वर्षा की थी। उनके गर्भावतारके समय इन्द्रने देव-देवियोंके साथ आकर बड़ी भक्तिसे उनके माता-पिताकी पूजा एवं स्तुति की थी।

घनरथ तीर्थंकरका जन्मकल्याणक इन्द्रादिक मना रहे हैं।

उनके उत्पन्न होते ही सब देवोंके साथ इन्द्र उन्हें मेरु पर्वत पर ले गए थे तथा बड़ी भक्तिसे क्षीर-सागरके जलसे अभिषेक किया था।

उस बाल्यावस्थामें ही शचि इन्द्राणीने स्वर्गमें उत्पन्न हुए वस्त्र, माला, आभूषण आदि उत्तम पदार्थोंसे उनको विभूषित किया था। उन तीर्थंकरके रूपको देखकर इन्द्रके मनमें भी आश्चर्य हुआ था एवं अतृप्त होकर उसने उस दिव्यरूपको देखनेके लिए एक हजार नेत्र बना लिए थे। उनका रूप महादिव्य था, उनके शरीरमें पसीना नहीं आता था, दूधके समान उनका रुधिर था, सम-चतुरस्र-संस्थान था, तथा वज्रवृषभ-नाराच संहनन था, अर्थात् वज्रमय हड्डियोंसे बना हुआ वज्रमय शरीर था। उनका शरीर सम्पूर्ण पुण्यरूप परमाणुओंसे बना हुआ उत्तम (सुन्दर) था, उनके श्वासमें इतनी सुगन्ध थी कि सब दिशाओंमें उसकी सुगन्ध फैल जाती थी, वह शरीर महादिव्य लक्षणोंसे एवं व्यंजनोंसे शोभित था, शुक्लध्यानके योग्य अप्रमाण महावीर्य था तथा उनकी वाणी शुभ, प्रिय तथा सब जीवोंका हित करनेवाली थी। दश दिव्य अतिशय भगवानके शरीरके साथ ही प्रगट हुए थे। जब वे धीर-वीर राज्य-गद्दी पर विराजमान थे; तब देव, विद्याधर सब उनकी सेवा करते थे, फिर भला राजाओंकी तो बात ही क्या है? वे भगवान स्वर्गमें उत्पन्न होनेवाले गीत, नृत्य, आभूषण, वस्त्र आदि उत्तम भोंगोंके द्वारा प्रतिदिन सुखका अनुभव किया करते थे। इस संसारमें उन घनरथ तीर्थंकरके समस्त इन्द्रियोंको तृप्त करनेवाले सुखका परिमाण भला कौन कर सकता है?

घनरथकी मनोहरा नामकी रानी थी, जो गुणवती, सौभाग्यवती, पुण्यवती तथा अनेक लक्षणोंसे सुशोभित थी। उन दोनोंके यहाँ ग्रैवेयकसे चयकर पुण्यकर्मके उदयसे 'मेघरथ' नामका पुत्र हुआ था। उन्हीं घनरथ तीर्थंकरकी मनोरमा रानीके गर्भसे दूसरे ग्रैवेयकसे चयकर पुण्यकर्मके

उदयसे 'दृढ़रथ' नामका पुत्र हुआ था। दृढरथसे प्रसन्न होकर उसके पिता घनरथने सब भाई, बन्धुओंके साथ बड़े उत्सवसे उन दोनोंकी उपासकादि सब क्रियायें की थीं। उन दोनोंने अपने परिवारके साथ जिनालयमें जाकर बड़ी विभूतिके साथ भगवानका महाभिषेक किया एवं भगवानकी पूजा की थी। वे चन्द्रमाके समान बढ़ने लगे थे। वे दोनों ही भाई बाल्यावस्था को बिताकर माता-पिताको आनन्दित करते थे एवं कुमार अवस्थाको पाकर सब परिवारके प्रिय हो गये थे। उन दोनों भाईयोंने थोड़े ही समयमें राजनीति, शस्त्र-विद्या एवं जैन-सिद्धांतके रहस्य हृदयङ्गम कर लिये थे। वे दोनों ही भाई पुण्य-कर्मके उदयसे अनुक्रमसे यौवन, सद्गुण, लक्ष्मी, कला, बुद्धि एवं कान्तिसे एकसाथ विभूषित हो गये थे। उनका यश संसारमें व्याप्त था, न्यायमार्गमें लीन थे, पूज्य एवं दानी थे, श्री जिनेन्द्रदेवके चरणकमलोंके भक्त थे एवं निर्ग्रन्थ गुरुओंके सेवक थे। वे सुशील थे, धर्मात्मा थे, विद्या एवं विनयके पारगामी थे, अनेक राजा उनकी सेवा करते थे; इसलिए वे इन्द्र, प्रतीन्द्रके समान सुशोभित होते थे। पहले भवोंको निरूपण करनेवाला तथा तत्त्वोंको प्रत्यक्ष प्रकट करनेवाला अनुगामी अवधिज्ञान केवल मेघरथको ही था दृढ़रथको नही था।

वे दोनों ही भाई यौवन अवस्थाको प्राप्त हो गये थे तथा अन्य सब ऐश्वर्योंको भी प्राप्त हो गये थे; इसलिए मदोन्मत्त हाथी के समान उनको देखकर घनरथ तीर्थंकरको उनके विवाह करनेकी चिंता हुई। उन्होंने बड़े पुत्रका विवाह प्रियमित्राके साथ कर दिया तथा छोटे पुत्र दृढ़रथका विवाह सुमतिके साथ कर दिया था। घनरथ तीर्थंकर, पुत्र पौत्र आदिसे वेष्टित होकर सब प्रकारकी सुख-सामग्रियोंका उपभोग करते हुए सिंहासन पर विराजमान होकर इन्द्रकी–सी लीला करते थे। एक

दिन प्रियमित्राकी दासी सुषेणा घनकुण्ड नामक एक मुर्गेको लेकर आई तथा सबको दिखाकर कहने लगी—जिसका मुर्गा हमारे मुर्गेसे जीत जायेगा, उसे एकहजार मुद्राएँ दूंगी। सुषेणाकी यह बात सुनकर छोटी रानी(दृढ़रथकी पत्नी सुमति)की दासी काँचना घनकुण्डसे लड़ानेके लिए वज्रकुण्ड नामक मुर्गेको ले आई।

ऐसे जीवोंके परस्पर लड़नेसे दोनोंको दुःख होता है। देखनेवालोंको भी हिंसामें आनन्द माननेसे रौद्र-ध्यान होता है। रौद्र-ध्यानसे महापाप होता है, पापसे नरक मिलता है तथा नरकमें दुःख सहना पड़ता है। इसलिए लोगोंको ऐसा युद्ध देखना भी अयोग्य है।

इसी बातको स्मरण करते हुए घनरथ तीर्थंकर भव्यजीवोंको समझानेके लिए तथा अपने पुत्रकी महिमा प्रगट करनेके लिए अपने पुत्र-पौत्रादिकोंके साथ बिना इच्छाके उन दोनोंके युद्धको देख रहे थे। वे दोनों ही पूर्व-जन्मकी शत्रुताके कारण परस्पर क्रोधपूर्वक आश्चर्य उत्पन्न करनेवाला तथा दुःख देनेवाला घोर युद्ध करने लगे। इसी बीचमें घनरथ तीर्थंकरने अपने पुत्र मेघरथसे पूछा—इन दोनोंका युद्ध क्यों हो रहा है? क्या पहिले जन्मकी शत्रुता इसका कारण है? पिताकी यह बात सुनकर अवधिज्ञानी मेघरथ सब जीवोंका हित करनेवाली तथा कानोंको सुख देनेवाली मधुरवाणीमें कहने लगे। हे आत्मीयजनों! मनको स्थिर कर सुनो। मैं इन दोनोंके पहिले जन्मकी शत्रुताकी कथा कहता हूँ।

## मुर्गेके पूर्वभवोंकी कथा

इस जम्बूद्वीपके ऐरावत क्षेत्रके रत्नपुर नगरमें दो वैश्य भाई थे। परन्तु मूर्ख थे; गाड़ीवानका काम करते थे। भद्र तथा धन उनका नाम था। एक दिन वे दोनों निर्दयी भाई लोभमें पड़कर एक बैलके लिए

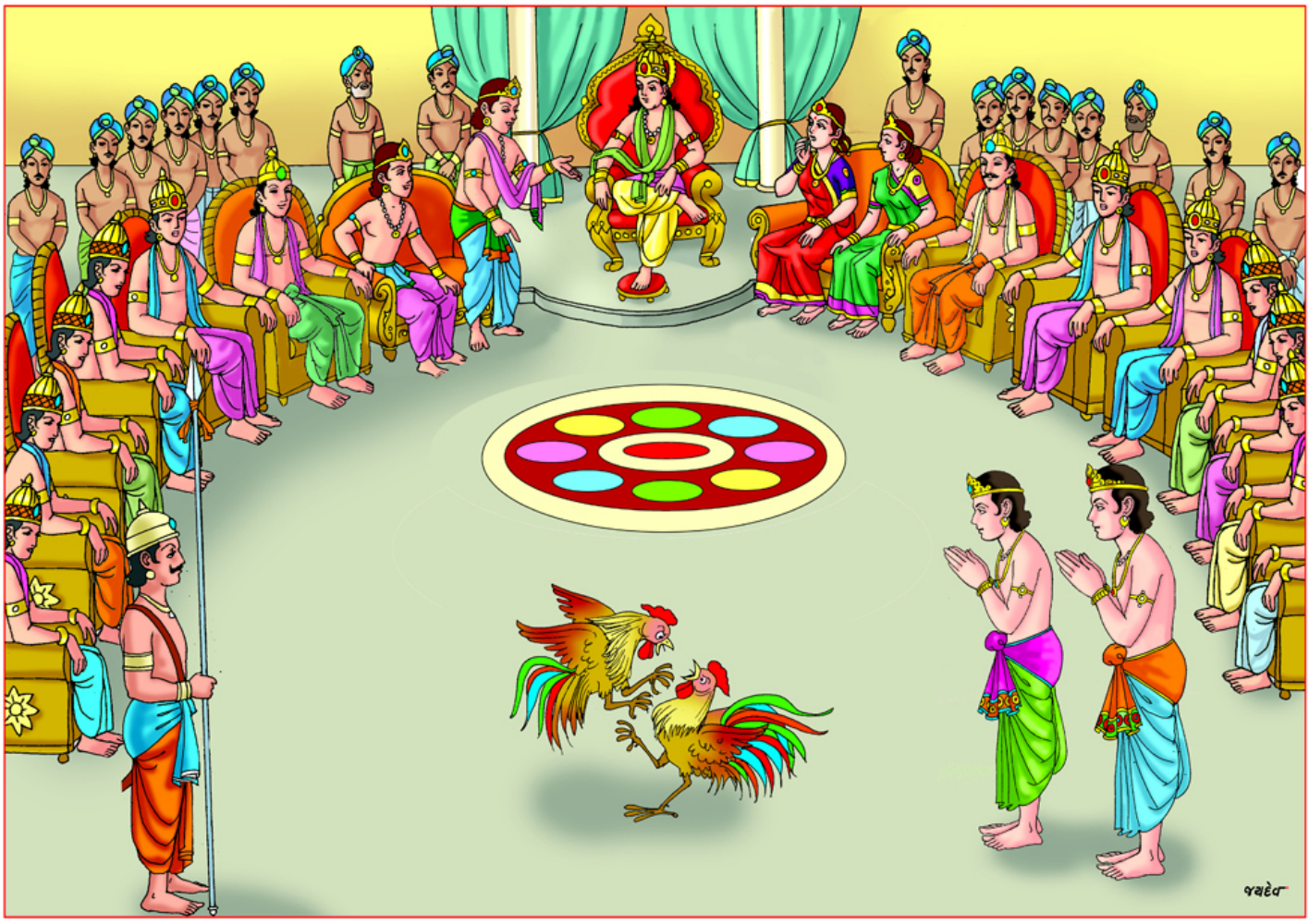

घनरथ तीर्थंकर निर्च्छुक भावसे अपने पुत्र-पौत्रादि व सभाजनोंके साथ मुर्गोंकी लडाई देखते हुए....।

मुर्गे मेघरथकुमारके उपदेशसे अपने पूर्वभव जानकर व्यंतर जातिके देव होते हैं।

आपसमें लड़ने लगे। वे दोनों ही पापी श्रीनदीके किनारे लड़ने लगे तथा एकदूसरेको भारी चोट पहुँचाने लगे। एक दूसरेकी असह्य चोटसे वे बहुत दुःखी हुए तथा लड़ते-लड़ते दोनों ही मर गए। वे दोनों भाई आर्तध्यानरूपी महापापसे मरे थे; इसलिए वे काँचन नदीके किनारे श्वेतवर्ण तथा ताम्रवर्ण नामक हाथी हुए थे। वे दोनों ही हाथी क्रोधी थे, मदोन्मत्त थे, बलवान थे तथा पहिले जन्मकी शत्रुता उनके हृदयमें भरी हुई थी। देखो! जो क्रोध करते हैं, उनकी क्या गति होती है? वहाँपर भी पहिले जन्मके बैरके संस्कारसे वे दोनों क्रोधित होकर लड़ने लगे तथा अपने मजबूत दाँतोंसे एक दूसरेको चोट पहुँचाने लगे तथा परस्पर एक दूसरेकी चोटसे दुःखी होकर दोनों मर गये। वे दोनों भाई मरकर पापकर्मके उदयसे अयोध्या नगरके नन्दिमित्र नामके ग्वालकी भैंसोंमें भैंसा हुए। वहाँपर भी पहले जन्मके बैरके संस्कारसे दोनोंने परस्पर दुःख देनेवाला युद्ध किया; बहुत काल तक वे परस्पर एक दूसरेको सींगोंकी चोटसे घायल करते रहे एवं अन्तमें दोनों ही लड़ते-लड़ते मर गये। दोनों मरकर उसी नगरके राजपुत्र शक्तिसेन एवं वरसेनके यहाँ वज्र सरीखे मजबूत मस्तकवाले भेड़े हुए। वहाँपर भी पहले जन्मके क्रोधके कारण बहुत दिनतक परस्पर लड़ते रहे एवं अन्तमें मरकर पापकर्मके उदयसे वे दोनों ये मुर्गे हुए हैं। इसलिए हे पिताश्री! यह निश्चित् है कि पहिले जन्मके संस्कारसे मनुष्योंकी शत्रुता एवं मित्रता दोनों ही अनेक भवों तक बराबर साथ चली आती हैं। इसलिए हे राजन्! बुद्धिमान लोगोंको प्राण नाश होने पर भी किसी दीन-हीनके साथ दुःख देनेवाला बैर कभी नहीं बाँधना चाहिए। इस प्रकार विद्वान मेघरथने उन दोनों मुर्गोंके पहले जन्मकी कथा कहकर सब सभासदोंको आश्चर्यचकित कर दिया एवं सबकी जिज्ञासाको संतुष्ट किया।

तदनन्तर इधर दोनों मुर्गे भी पापकर्मके उदयसे प्राप्त अनेक

प्रकारके दुःख देनेवाले पहिले भवकी शत्रुताका वृत्तान्त सुनकर अपने मनमें ही अपनी निंदा करने लगे। उन दोनोंने अनन्त सुखदायक वैराग्य धारण किया, परस्परकी शत्रुता छोड़ी एवं जीवनपर्यंत शुभ अनशन व्रत (उपवास) धारण किया। उन दोनोंने अपनी शक्ति के अनुसार भूख, प्यास आदि परिषहोंको सहन किया एवं अपने-अपने हृदयमें श्री जिनेश्वरदेवका स्मरण करते हुए धर्म धारणकर रहने लगे। उन्होंने प्रतिदिनके काय-क्लेशसे शरीरको दुर्बल किया एवं शुभ ध्यानपूर्वक विधिपूर्वक प्राणोंका त्याग किया। तदन्तर वे दोनों ही मुर्गे मर कर धर्मके प्रभावसे भूतारण्य एवं दैवारण्य वनमें ताम्रचूल एवं कनकचूल नामके भूतजातिके देव हुए।

## विद्याधरकी कथा

इसके बाद दृढरथने मेघरथको पूछा—इन दोनों मुर्गोंकी लड़ाईके समय अनेक विद्याओंमें निपुण दो विद्याधर यहाँ आकर बैठे हुए हैं। वे विद्याधर कौन हैं एवं यहाँ क्यों आए हैं? यह सब आप अपने ज्ञानके बलसे बताईये।

तब मेघरथ कहने लगे कि हे पिताजी! हे कुमार! हे सभाजनों! जम्बूद्वीपके भरतक्षेत्रके विजयार्द्धकी उत्तर श्रेणीमें कनकपुर नगर है, उसमें पुण्यकर्मके उदयसे गरुड़वेग नामका विद्याधर राज्य करता था, उन दोनों के देवतिलक एवं चन्द्रतिलक नामके दो पुत्र थे, जो प्रतापी थे, धीर-वीर थे एवं मोक्षगामी थे। किसी दिन वे दोनों भाई अपने अशुभ कर्मोंको दूर करनेके लिए भगवान श्री जिनेन्द्रदेवकी प्रतिमाओंकी वन्दनाके निमित्त सिद्धकूट चैत्यालयमें गये थे। वहाँपर उन्होंने भगवानकी पूजा की, स्तुति की, नमस्कार किया एवं धर्म-श्रवण करनेके लिए वहाँ पर बिराजमान दो चारण मुनियोंके समीप पहुँचे। वे दोनों ही मुनि

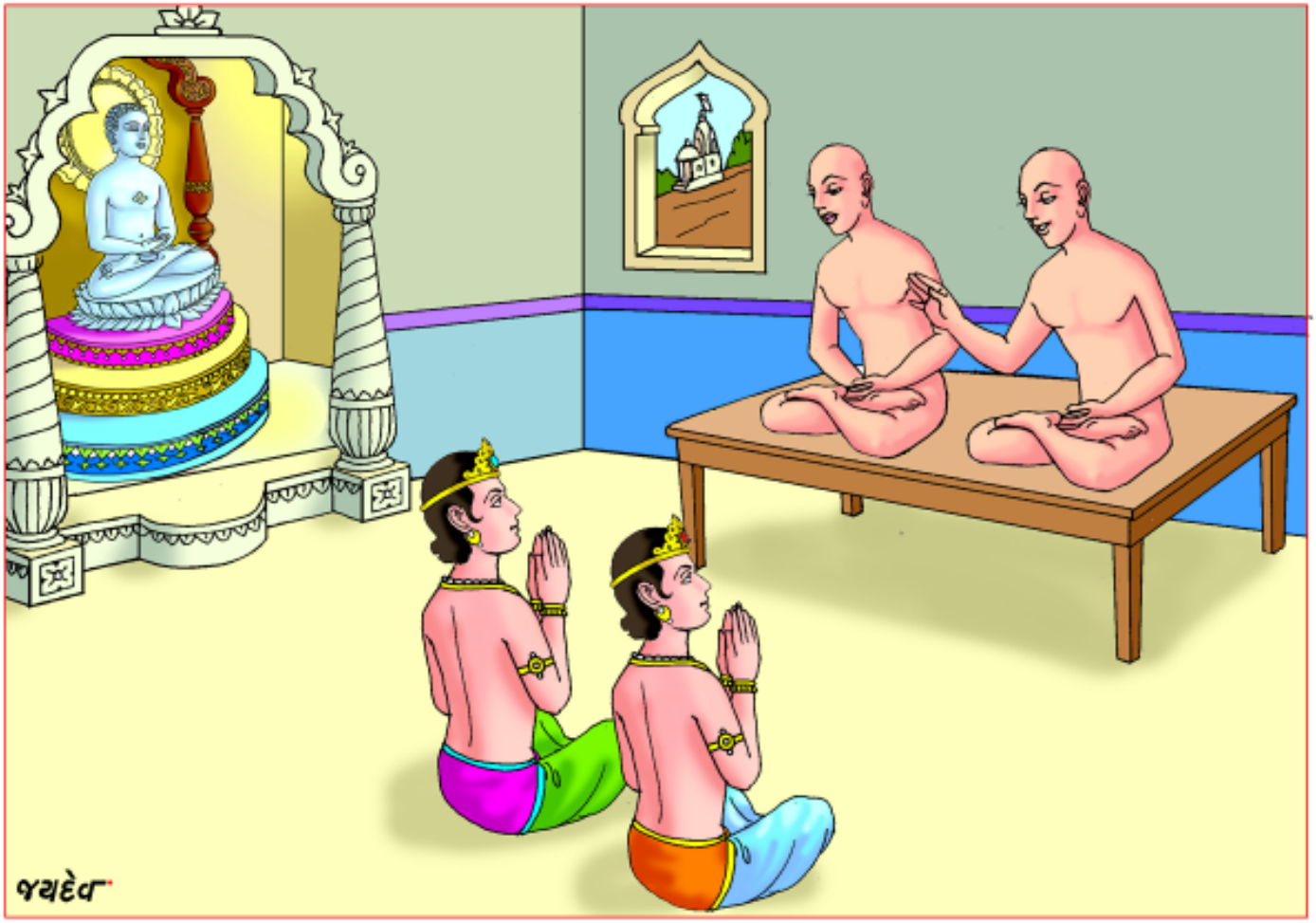


दो विद्याधर भाई सिद्धकूट चैत्यालयकी वंदना करके चारण ऋद्धिधारी मुनिराजकी वंदना, प्रदक्षिणा पश्चात् उपदेश सुनते हुए....।

अवधिज्ञानी थे, चतुर थे एवं देव भी उनकी पूजा करते थे। उन दोनों विद्याधरोंने बड़ी भक्तिसे उनकी तीन प्रदक्षिणाएँ दीं; मस्तक झुकाकर उन्हें नमस्कार किया एवं समीप जाकर बैठ गए। उनमेंसे बड़े मुनिने स्वर्ग प्राप्त करानेवाला गृहस्थधर्मका तथा मोक्षके कारण मुनिधर्मका उपदेश दिया कि—यह धर्म ही सुखोंकी खान है, मनुष्योंके परलोकके लिए यही पाथेय (साथ ले जाने योग्य) है एवं यह ही पापोंको नाश करनेवाला है तथा उत्तम है। मुनिके द्वारा कहे हुए एवं संसारसे पार कर देनेवाले उस धर्मको सुनकर दोनोंने मुनिको नमस्कार कर अपने पहिले जन्मके भव पूछे। उन्होंने पूछा—हे भगवन्! हम दोनोंने पहिले जन्ममें ऐसा कौनसा तप किया था, या व्रत पालन किया था, या भगवानका पूजन किया था, जिससे हम दोनोंको विद्याधरोंकी विभूति प्राप्त हुई है? हे देव! हमें सुखी करनेके लिए यह सब कृपापूर्वक निरुपण कीजिये। उन दोनों पर अनुग्रह करनेके लिए ही मुनिराज कहने लगे—

## विद्याधरोंके पूर्वभवकी कथा

हे विद्याधरों! मैं पहली कथा कहता हूँ, तुम चित्त लगाकर सुनो। धातकीखण्ड द्वीपके पूर्व मेरुकी उत्तर दिशाकी ओर ऐरावत क्षेत्रमें तिलकपुर नामका एक नगर है। उसमें धर्मात्मा अभयघोष नामका राजा राज्य करता था। उसके शुद्ध हृदयवाली सुवर्णतिलका नामकी रानी थी। उन सुवर्णतिलका रानीके विजय एवं जयन्त नामके दो पुत्र हुए थे। वे दोनों ही भाई धीर-वीर, शुभ लक्षणोंसे सुशोभित, नीतिवान तथा पराक्रमी थे। उसी देशके विजयार्द्ध पर्वतकी दक्षिण श्रेणीमें मन्दर नामक एक नगर है; उसमें शंख नामका विद्याधर राज्य करता था, उसकी रानीका नाम जया था। उन दोनोंके पृथ्वीतिलका नामकी पुत्री उत्पन्न

हुई थी। वह बड़ी रूपवती थी, पुण्यकर्म करनेवाली थी एवं अनेक श्रेष्ठ लक्षणोंसे सुशोभित थी। पुण्यकर्मके उदयसे उस सुन्दरी विद्याधरीके साथ अभयघोषने विधिपूर्वक विवाह किया था। राजा अभयघोष एक वर्ष तक बराबर उसमें आसक्त रहा; इसलिए पापकर्मके उदयसे सुवर्णतिलका (पहली रानी) बड़ी दुःखी हुई। वसंत ऋतुके समय एक दिन सुवर्णतिलकाकी दूती चन्द्रतिलकाने आकर राजासे कहा—हे देव! रानी सुवर्णतिलकाका बाग बहुत ही सुन्दर एवं मनोहर है, पुण्यके फलके समान उसमें बहुतसे फल लगे हुए हैं; आप उसे देखनेके लिए चलिये। दासीकी बात सुनकर रानी सुवर्णतिलकाके स्नेहके कारण जब राजा उस बागमें चलनेके लिए तैयार हुए, तो पृथ्वीतिलकाने अपनी विद्याके बलसे उसी समय वहीं पर सब ऋतुओंके फल-पुष्पोंसे भरा हुआ एक सुन्दर बाग बना कर दिखला दिया एवं राजासे कहा—हे देव! आप इस मनोरम बागको देखिये एवं कहीं दूसरी जगह मत

राजा अभयघोष पृथ्वीतिलका के विद्यासे उत्पन्न बागमें जाना छोड स्वर्णतिलकाके बागकी ओर जाते हुए....

जाईये। इस प्रकार कह कर उसने राजाको अन्यत्र जानेसे रोका। परंतु पृथ्वीतिलकाकी बातका उल्लंघन कर राजा सुवर्णतिलकाके बागको देखने चला ही गया। मान-भंग होनेके कारण विद्याधरी पृथ्वीतिलकाको बहुत दुःख हुआ। वह विचार करने लगी—इस पराधीन स्त्री जातिको धिक्कार है, यह स्त्री-पर्याय ही दुःखका कारण है, इस पर्यायमें मोक्ष भी मिलता नहीं। यह पर्याय निंद्य, अपवित्र एवं अशुभ है। जो भोग बिना सन्मानके भोगे जाते हैं, वे दुःखके सागर हैं तथा चारों गतियोंमें परिभ्रमण करानेवाले हैं, वे समस्त भोग आज मेरे पूरे हों, अर्थात् अब मैं उन्हें भोगना नहीं चाहती। इस प्रकार चिंतवन कर वह वैराग्यमें प्रवृत्त हुई एवं गृह, भोग तथा पतिको छोड़कर एक साड़ीके अतिरिक्त अन्य सब परिग्रहोंका त्यागकर सब तरहके सुख देनेवाली उत्तम दीक्षा धारण की।

अथानन्तर—एक दिन राजा अभयघोषने मध्याह्नके समय परम प्रसन्नताके साथ दमवर नामक श्रेष्ठ मुनिराजकी पड़गाहना की, जिससे उन्हें श्रेष्ठ धर्मका उपार्जन हुआ। जिन-धर्मकी इच्छा रखनेवाले उस राजाने अशुभ कर्मोंका नाश करनेके लिये दाताके सातों गुणोंसे विभूषित होकर बड़ी भक्तिसे नवधाभक्ति सहित विधिपूर्वक उन मुनिराजको प्रासुक, मिष्ट, सरस एवं उत्तम आहार दिया। उस समय अर्जन किए हुए पुण्यके प्रभावसे राजा अभयधोषके महलमें रत्न-वृष्टि आदि उत्तम पञ्चाश्चर्य हुए। पात्र-दानके फलसे जिस प्रकार इहलोकमें भारी विभूति प्राप्त होती है; उसी प्रकार परलोकमें स्वर्ग-मोक्ष देनेवाली अनेक प्रकारकी लक्ष्मी प्राप्त होती है। दानके प्रभावसे प्राप्त हुए पञ्चाश्चर्योंको देखकर तथा काललब्धिके प्राप्त हो जानेसे राजा अभयघोष उसी समय संवेगको प्राप्त हुआ। वह विचार करने लगा—देखो, जिन मुनियोंको दान देनेसे ही यह मनुष्य क्षणमात्रमें ही देवोंके द्वारा प्रकट की गई बहुमूल्य उत्तम लक्ष्मीको प्राप्त करता है; तो उन उत्तम मुनियोंको तपश्चरणके प्रभावसे स्वर्ग-मोक्ष आदि परलोकमें कौन-सी

उत्तम लक्ष्मी प्राप्त होगी, वह तो कल्पनातीत है। पापरूप समुद्रके मध्यमें रहनेवाली इस गृहस्थीसे क्या सिद्ध हो सकता है? क्योंकि इस गृहस्थीमें रहते हुए मनुष्योंको मोक्षरूपी स्त्रीका मुखकमल कभी दिखाई नहीं दे सकता। इसका कारण यह है कि गृहस्थ कभी-कभी दान, पूजा आदिके द्वारा थोड़ा पुण्य संपादन करता तो अवश्य है; परंतु दूसरे ही क्षण वह हिंसा आदि पापकार्योंके द्वारा अधिक पापका संचय कर लेता है। गृहस्थ व्यापाररूपी कार्योंके समुद्रमें सदा डूबा रहता है एवं बहुतसी चिंताओंसे घिरा रहता है, इसलिए वह कभी सुखी नहीं हो सकता; उसे सदा दुःख ही भोगने पड़ते हैं। गृहस्थ-धर्म यदि कल्याण करनेवाला ही होता तो तीर्थंकर इसे क्यों छोड़ते एवं मोक्ष प्राप्त करनेके लिए लक्ष्मीको छोड़कर क्यों दीक्षा धारण करते? इस संसारमें केवल मुनियोंको ही अनेक प्रकार सुख प्राप्त होता है; क्योंकि वह सुख सब तरहकी चिंताओंसे रहित है, आत्मासे और उसके ध्यानसे प्रकट हुआ है। संसारमें वे ही मुनिराज धन्य हैं, जो आत्मानंदरूपी अंजुलिके पात्र द्वारा हृदयरूपी घटसे ध्यानरूपी अमृतको निकालकर सदा पीते रहते हैं।

इसलिए मैं जानता हूँ कि आत्मासे प्रकट हुआ उपमा रहित पूर्ण सुख तो वीतराग मुनियोंको ही है; अन्य रागी-द्वेषी जीवोंको वह सुख कभी प्राप्त नहीं हो सकता। इस प्रकार विचार कर राजा अभयघोषने शीघ्र ही राज्यका त्याग तुच्छ तृणके समान किया। अपने दोनों पुत्रोंको साथ लेकर वह अनंगसेन गुरुके समीप पहुँचा। वहाँ जाकर राजाने तीनों लोकोंका हित करनेवाले उन मुनिराजको नमस्कार किया एवं उनकी तीन प्रदक्षिणाएँ दीं। उन्होंने बाह्याभ्यन्तर दोनों तरहके परिग्रहोंका त्याग किया एवं मोक्ष प्राप्त करनेके लिए अपने दोनों पुत्रोंके साथ एकाग्र चित्तसे समस्त कर्मरूपी तृणको जलानेके लिए अग्निके समान संयम धारण किया। तदन्तर वे तीनों ही मुनिराज स्वर्ग-मोक्षकी लक्ष्मीके

चित्तको मोहित करने-वाले बारह प्रकारके घोर तपश्चरण करने लगे। मुनिराज अभय-घोषने सम्यग्दर्शनकी विशुद्धि धारण की एवं तीर्थंकरपदको देनेवाली सोलहकारण भावनाओंका चिन्तवन किया। तीर्थंकर जो अब तक हो गये हैं अथवा जो अभी हैं एवं जो आगे होंगे; वे सब इन्हीं भावनाओंके चिन्तवन कर ही हुए हैं, यदि केवल सम्यग्दर्शनकी विशुद्धि ही प्राप्त हो जाए, तो बलप्रद भावना तीर्थंकर नामकर्मका बंध कराती है; सम्यग्दर्शनकी विशुद्धिके बिना मनुष्योंको कभी भी तीर्थंकर नामकर्मका बंध नहीं होता। अल्प-शक्तिवाला जीव भी सम्यग्दर्शनसे सुशोभित होकर इन भावनाओंके प्रभावसे तीर्थंकर हो जाता है एवं सब कर्मोंसे रहित हो कर सिद्ध-पद प्राप्त करता है, इसमें कोई संदेह नहीं। इसलिए चारों प्रकारके संघको मोक्षरूपी स्त्री प्राप्त करनेके लिए मोक्षरूपी स्त्रीकी सखीके समान इन भावनाओंका चिन्तवन प्रतिदिन करना चाहिए।

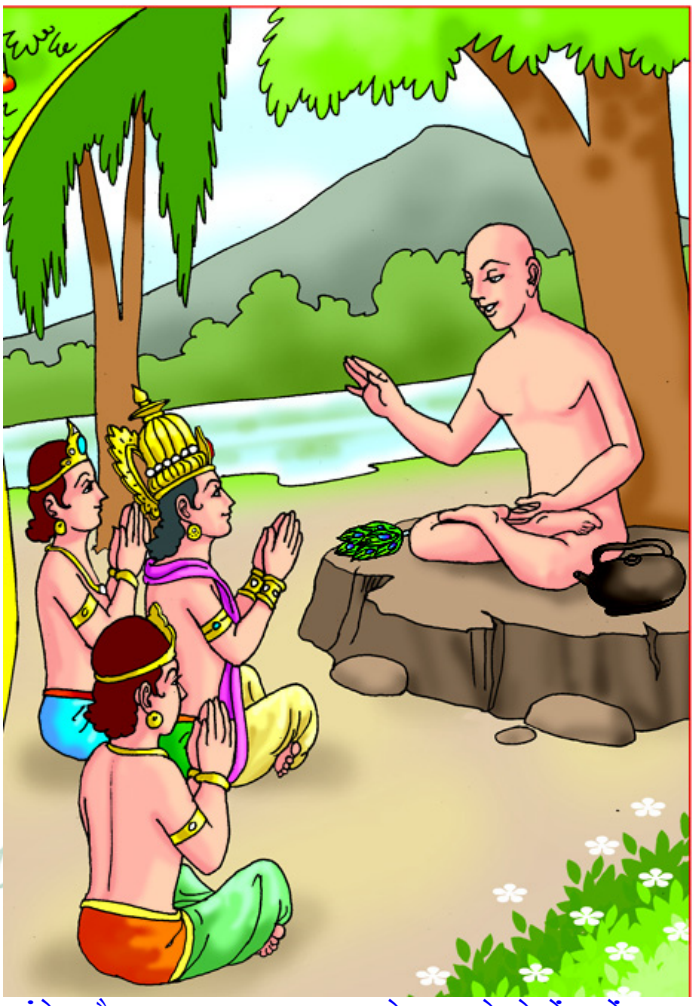

संवेग-वैराग्य प्राप्त राजा अभयघोष अपने दोनों पुत्रों सह अनंगसेन गुरुके पास उपदेश सुनते हुए.....।

अभयघोष मुनिराजने अपनी शक्ति प्रकट कर जीवनपर्यंत विधिपूर्वक उत्तम संयमका पालन किया। आयुके अंत समयमें चारों प्रकारके आहारका त्याग किया, संन्यास धारण किया, चारो पवित्र आराधनाओंका आराधन किया, बिना किसी संकल्प-विकल्पके अपना मन परमेष्ठीके चरणोंमें लगाया एवं सब तरहके प्रयत्नके साथ समाधिपूर्वक प्राणोंको छोड़कर अच्युत नामके सोलहवें स्वर्गमें वे दोनों पुत्रों सहित तीनों ही तपश्चरणके प्रभावसे बड़ी ऋद्धिके धारी देव हुए। वहाँ पर उन्होंने अपनी देवीयोंके साथ धर्मके प्रभावसे बाईस सागर तक उपमा-रहित, अत्यंत सुख देनेवाले स्वर्गके उत्तम भोग भोगे फिर शेष पुण्य कर्मके उदयसे आयुके अन्तमें वहाँसे च्युत होकर तुम दोनों भाई यहाँ विद्याधर राजपुत्रके रूपमें पैदा हुए हो। इस प्रकार मुनिराजके वचनोंको सुन दोनों विद्याधरोंको बहुत संतोष हुआ एवं देवोंके द्वारा पूज्य उन मुनिराजको भक्तिपूर्वक नमस्कार कर वे फिर पूछने लगे—हे प्रभो! हमारे पहिले जन्मके पिता अभयघोष कहाँ उत्पन्न हुए? हे दयालु! कृपा कर यह और बता दीजिए।

इसके उत्तरमें शांत परिणामोंको धारण करनेवाले वे मुनिराज अनुग्रह कर उन दोनोंकी शंकाओंको दूर करनेके लिए मधुर वचनमें कहने लगे—हे विद्याधरों! मैं तुम्हारे पिताका तीर्थंकर बननेवाला वृत्तान्त कहता हूँ, तुम मन लगाकर सुनो। मनुष्योंसे भरे हुए जम्बूद्वीपमें धर्मका स्थान अभूतपूर्व विदेहक्षेत्र है, उसकी पुष्कलावती देशमें पुण्डरीकिणी नगरी है। उसमें पुण्य कर्मके उदयसे हेमाङ्गद नामका राजा राज्य करता था एवं उसकी रूपवती सुंदरी रानीका नाम मेघमालिनी था। अभयघोषका जीव सोलहवें स्वर्गमें वचनातीत सुखोंका अनुभव कर आयुके अन्तमें वहाँसे चलकर हेमाङ्गद-मेघमालिनीके यहाँ तीनों लोकोंका हित करनेवाले घनरथ नामके तीर्थंकरकी पर्यायमें उत्पन्न हुआ है। इस समय

श्रीमान् राजा घनरथ अपनी रानी एवं पुत्रोंके साथ दो मुर्गोंका युद्ध देख रहे हैं। अपने पूर्वभवके पिताके ऐसे उत्तम समाचार सुनकर दोनों विद्याधरोंने मुनिराजको नमस्कार किया।

(इस प्रकार राजसभामें विद्याधरोंके बारेमें पूछा हुआ प्रश्नका उत्तर समाप्त हुआ ।)

यह कथा सुनाकर मेघरथने कहा कि हे पिताजी! आप ही इन विद्याधरोंके पूर्वभवके पिता अभयघोष हो अतः पहिले जन्मके प्रेमके कारण ही दोनों विद्याधर आपको देखनेके लिए आए हैं।

इस प्रकार मेघरथसे सब कथा सुनकर दोनों विद्याधरोंने तीर्थंकर भगवान घनरथको एवं राजकुमार मेघरथको नमस्कार किया, पहिले जन्मके स्नेहके कारण भक्तिपूर्वक दिव्य वस्त्र-आभूषणोंसे बार-बार उनकी पूजा की एवं स्तुति की।

तदनन्तर वे दोनों ही विद्याधर शरीर, भोग एवं संसारसे विरक्त हुए तथा संयम धारण करनेके लिए गोवर्द्धन मुनिराजके समीप पहुँचे मन-वचन-कायसे मुनिराजको नमस्कार कर एवं परिग्रहोंका त्याग कर मोक्ष प्राप्त करनेके लिए चिरस्थायी मोक्ष-लक्ष्मीकी प्रदायक जिन-दीक्षा धारण की। उन दोनोंने अनिन्द्य, घोर, असह्य तपश्चरण किया, शुक्लध्यानरूपी शस्त्रसे घातिया कर्मरूपी अनादि शत्रुओंका नाश किया एवं अनंत गुणोंका समुद्र तथा लोकालोकको प्रगट करनेवाला केवलज्ञान प्राप्त किया। इन्द्रोंने उसी समय आकर उनकी पूजा की। अंतमें उन्होंने शुक्लध्यानरूपी अग्निसे बाकीके कर्मरूपी ईंधनको जलाया एवं कुछ ही समयमें अनंत सुखके स्थानभूत लोकके शिखर पर जा बिराजमान हुए।

जो दोनों मुर्गेके जीव धर्मके प्रभावसे भूतारण्य एवं देवारण्य वनमें ताम्रचूल तथा कनकचूल नामक देव हुए थे वे दिव्यगुणोंसे सुशोभित उन देवोंने अपने अवधिज्ञानसे उसी समय अपने पहिले भवके सब समाचार जान लिए एवं परस्पर अपना सम्बन्ध भी जान लिया। वे दोनों ही

विचारने लगे—कहाँ तो हम मांसभक्षी, निन्द्य, हीन पक्षी थे तथा कहाँ ये राजकुमार मेघरथ द्वारा जीवोंकी दया-पालनका उपदेश प्राप्त हुआ। इस समय यदि हम वहाँ जाकर उस धर्मात्माका प्रत्युपकार न करें, तो फिर इस संसारमें हमारे समान अन्य कृतघ्न और कौन होगा? इसप्रकार कह कर वे दोनों भूत जाति के देव वहाँ आए, आकर उन्होंने बड़े प्रेमसे मेघरथको प्रणाम किया; वस्त्र, माला, आभूषण आदिसे उनकी पूजा की। उन्होंने उनकी बार-बार प्रशंसा की तथा भक्तिपूर्वक कहा—हे नराधीश! आप धन्य हैं, श्रेष्ठ ज्ञान तथा गुणसे शोभायमान हैं। हे देव! आपके ही प्रसादसे तिर्यंच योनिको काटकर हम दिव्य शरीरको धारण करनेवाले देव हुए हैं। अब हम केवल यही प्रत्युपकार करना चाहते हैं कि आपको मानुषोत्तर पर्वतके भीतरका सब जिनेन्द्र वैभव दिखा सकते हैं। इस प्रकार कहकर वे दोनों ही देव उनके उत्तरकी प्रतिक्षामें भक्तिपूर्वक खड़े रहे, तब कुमार मेघरथने उन दोनोंकी विनयको स्वीकार किया। उनकी आज्ञा सुनकर दोनों देवोंने अनेक प्रकारकी ऋद्धियोंसे शोभायमान एक विमान बनाया। उन्होंने उस विमानमें अन्य श्रेष्ठ व्यक्तियोंके साथ देवोपम राजकुमार मेघरथको बिठाया। उन्होंने उस विमानको ज्योतिषी देवोंसे विभूषित आकाश-मार्गमें पहुँचाया तथा फिर वे दोनों देव राजकुमार मेघरथको सविस्तार लोक दिखाने लगे तथा उन्हें ढाई द्वीपमें आए अकृत्रिम जिनालयोंके दर्शन कराये।

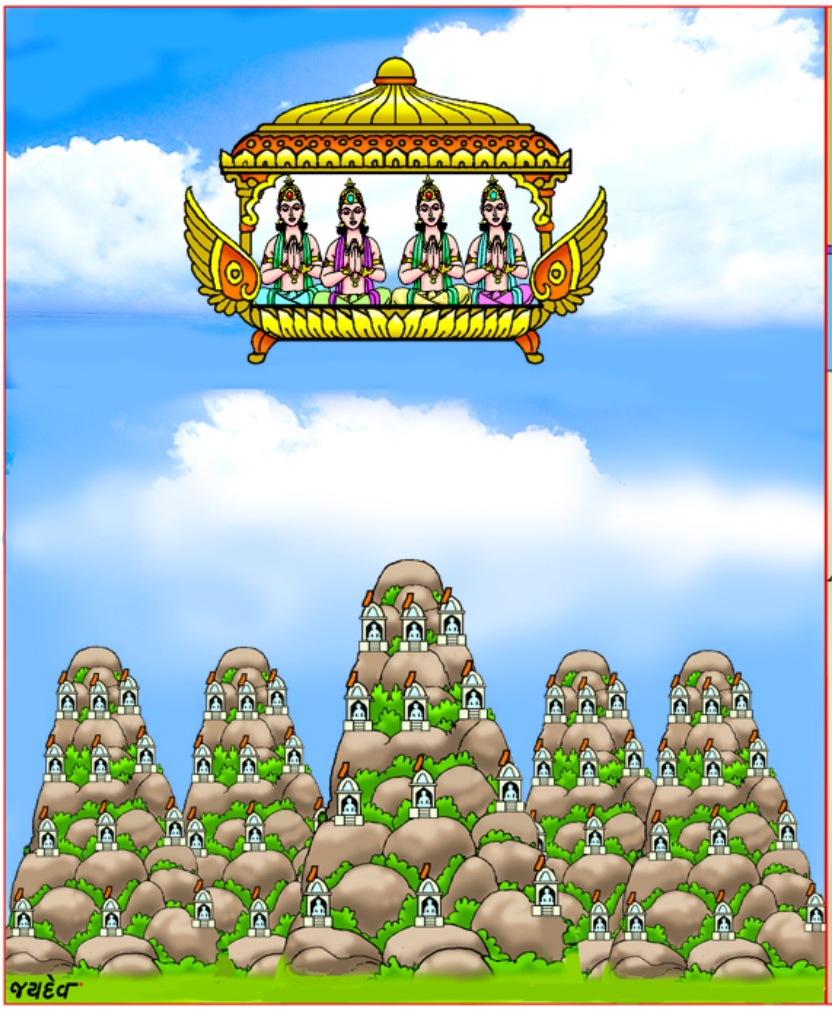

(१) दोनों व्यंतर जातिके देव मेघरथकुमार व अन्य श्रेष्ठ व्यक्तियोंको पंचमेरु आदि ढाई द्वीपका जिनेन्द्र वैभव दिखाते हुए...।

(२) दोनों देव सह मेघरथकुमार आदि अकृत्रिम जिनमन्दिरस्थ दर्शन, पूजन करते हुए....।

# भगवान महावीर

बालक-1 : गुरुजी हमें भगवान महावीरस्वामीके बारेमें कुछ बताईये।

शिक्षक : वैसे तो अनेक भव पूर्व भगवान महावीरका जीव भगवान आदिनाथके पौत्र मरीचिकुमार थे। तब ही से उनका तीर्थंकर-द्रव्य प्रजाजनोंमें ज्ञात हो गया था। परंतु अपने आत्म-हितके पुरुषार्थ बिना कई भवों पश्चात् वे एक बार जम्बूद्वीपके हिमवन पर्वत पर देदीप्यमान, क्रूर सिंह हुए। उस समय आकाशमार्गसे दो मुनिभगवंत वहाँ पधारे और बड़ी दृढ़तासे सिंहको उसके पूर्वके अनेक भवोंका तथा उसमें भोगे हुए भयंकर दुःखोंका वर्णन करते हुए करुणापूर्वक उपदेश दिया कि उनके इस ही द्वीपके भरतक्षेत्रके **"होनहार अन्तिम तीर्थंकरकी यह दुर्दशा!"** सिंहको यह बात अपने कलेजेमें ऐसी चुभी कि उसने पश्चातापसे पुरुषार्थ द्वारा अपने पूर्वमें किये पापोंसे स्वयंको परिवर्तित करके निज ज्ञायक स्वभावकी ओर दृष्टिकर सम्यक्त्वरत्नको प्राप्त किया।

तत्पश्चात् 9वें भवमें चैत्र शुक्ला 13 के दिन कुण्डलपुर नगरमें पिता सिद्धार्थ राजा व माता प्रियकारिणी–त्रिशलाके पुत्ररत्नके रूपमें जन्मे। सौधर्म इन्द्रने उनका नाम **'वर्द्धमान'** रखा। वे ही अपने भगवान महावीर बने। वे जन्मसे ही वीरताको सार्थक करनेवाले **'वीर'** थे।

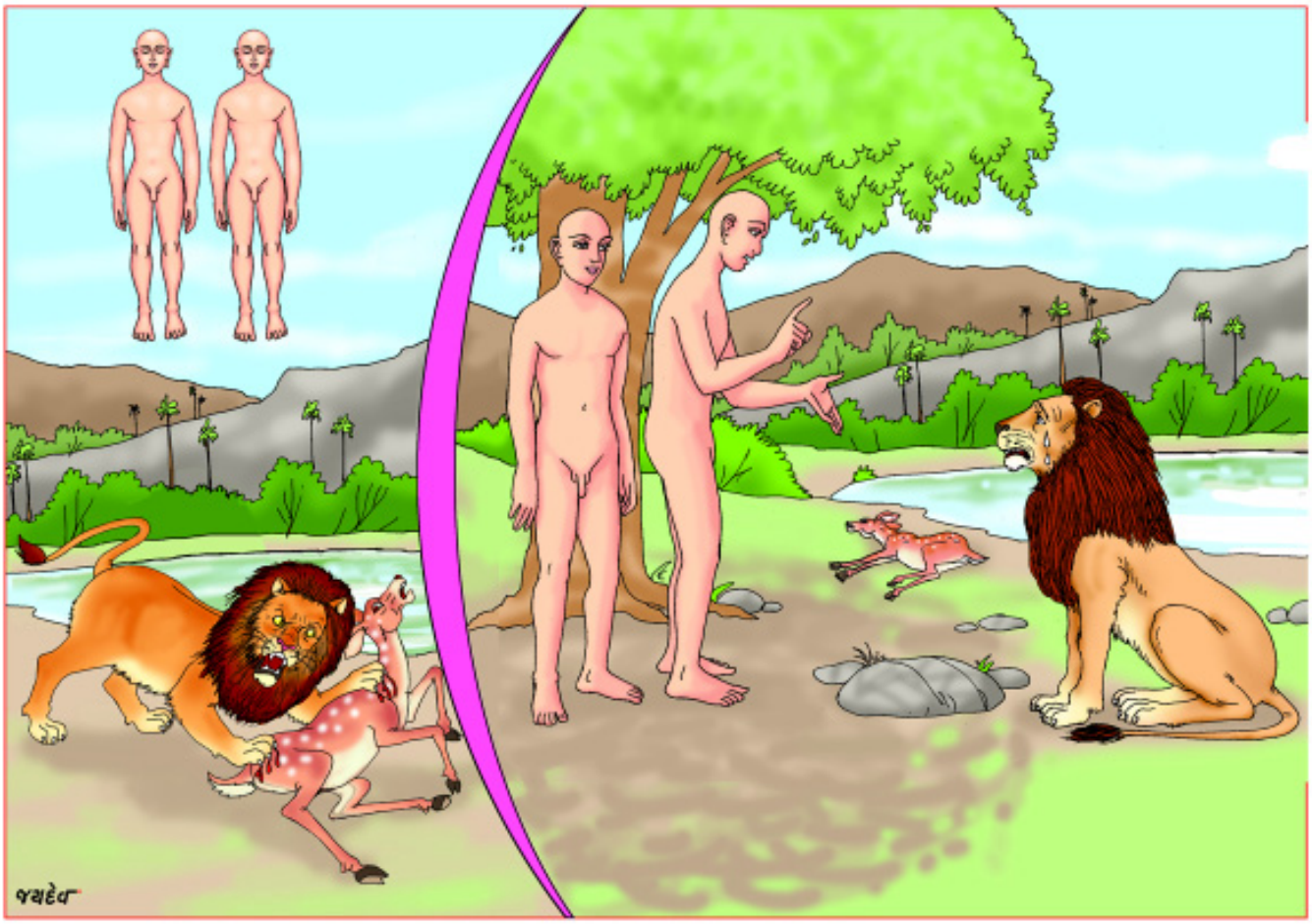

(१) भगवान महावीरका जीव पूर्व दसवें भवमें जम्बूद्वीपके हिमवन् क्षेत्रमें मृगका शिकार करता हुआ...।

(२) आकाशमार्गसे दो चारण मुनि भगवंत आकर सिंहको संबोधन, अपनी दुर्दषा जानकर सिंहका पश्चात्ताप व सिंह सम्यक्त्वरत्न प्राप्त करते हुए....।

बालक वर्द्धमानकी वीरताकी परीक्षा करने हेतु
सर्पका रूप लेकर आया हुआ देव ।

बालक-2 : गुरुजी! जब कि इन्द्रने उनका नाम वर्धमान रखा तो फिर वे **'महावीर'** केसै बने?

शिक्षक : एक दिनकी घटना है—इन्द्रकी सभामें देवोंने भगवानकी दिव्य वीरता पर चर्चा की। वे कहने लगे—'देखो, बालक वर्द्धमान तो कुमार अवस्थामें ही धीर-वीरोंमें अग्रणी, अतुल पराक्रमी, दिव्य रूपधारी एवं अनेक गुणोंके धारी क्रीड़ा करते हुए कितने मनोज्ञ प्रतीत होते हैं।' उसी स्थान पर संगम नामका एक देव बैठा हुआ था। देवोंकी बातें सुनकर वीर बालककी वीरता संबंधित परीक्षा लेनेके लिए वह स्वर्गसे चल पड़ा। वह उस वनमें आया, जहाँ प्रभु अन्य राजपुत्रोंके साथ क्रीड़ा कर रहे थे। देवने प्रभुको डरानेके उद्देश्यसे काले सर्पका विकराल रूप बनाया। वह एक वृक्षके साथ लिपट गया। उस सर्पके भयसे अन्य राजकुमार वृक्षसे कूद कर घबराये हुए दूर भाग गये।

पर कुमार वर्द्धमान जरा भी भयभीत नहीं हुए। वे उस विकराल सर्पके ऊपर आरूढ़ होकर क्रीडा करने लगे। ऐसा मालूम हो रहा था, मानो वे माताकी गोदमें ही क्रीड़ा कर रहे हों। कुमारका धैर्य देख सर्परूपी देव बड़ा चकित हुआ। वह प्रकट होकर प्रभुकी स्तुति करने लगा। उसने बड़े नम्र शब्दोंमें कहा—'हे देव! आप संसारके स्वामी हो, आप महान धीर-वीर हो, आप कर्मरूपी शत्रुके विनाशक तथा समग्र जीवोंके रक्षक हो। अत्यन्त सिद्ध-वधूके स्वामी श्री **'महावीर'**, मैं आपको बारम्बार प्रणाम करता हूँ।' इस प्रकार वह देव भगवानकी स्तुति कर उनका **'महावीर'** नाम सार्थक करता हुआ स्वर्गको चला गया।

बालक-3 : गुरुजी! उनका नाम 'सन्मति' भी तो था न?

शिक्षक : हाँ! एक बार संजय और विजय नामके दो चारणमुनियोंको किसी तत्त्व संबंधित सन्देह उत्पन्न हुआ परन्तु भगवानके जन्मके बाद ही वे उनके समीपसे निकले और उनके दर्शनमात्रसे ही उनका सन्देह दूर हो गया। इसलिए उन्होंने बड़ी भक्तिसे कहा कि **"यह बालक तो साक्षात् 'सन्मति' स्वरूप है,"** इस भांति उन्होंने बड़ी भक्तिसे **'सन्मति'** नाम रखा था।

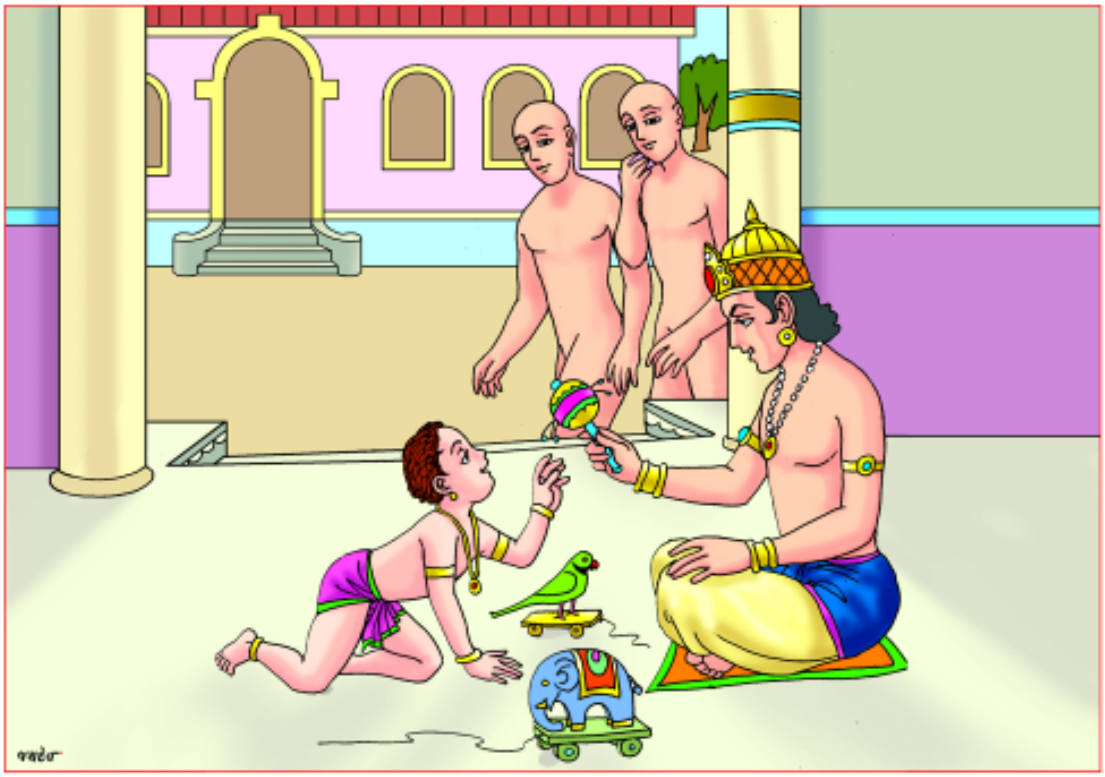

दो चारण ऋद्धिधारी मुनिओंको बालक वर्द्धमानके दर्शनमात्रसे
तत्त्वसम्बन्धी संदेह दूर हो जाता है अतः वे उनका नाम सन्मति रखते हैं।
तभीसे उनका नाम सन्मति प्रसिद्ध हुआ

बालक-4 : गुरुजी! उन वीरप्रभुको 'अतिवीर' भी तो कहते हैं वह कैसे?

शिक्षक : उत्तम क्षमागुणके द्वारा वे वीर भगवान दीक्षा पश्चात् पृथ्वीके समान सदा अकम्परूपसे आत्मध्यानमें लीन रहते थे। तब विहार करते करते 'वीर' मुनि उज्जयनिनगरीके अतिमुक्तक नामक स्मशानमें

मुनिराज वीर उज्जयनी नगरीके अतिमुक्तक स्मशानमें ध्यान करते थे,
उस समय स्थाणु नामक अन्तिम रुद्र मुनिराज पर विविध उपसर्ग करते हुए।

आकर ध्यान करने लगे। उस ही समय वहाँ जिनराजको देखकर अधोगामी और पापबुद्धिवाले—स्थाणु नामक अन्तिम रुद्रने उनके धैर्यके सामर्थ्यकी परीक्षाके लिए पापके उदयसे उनके ऊपर उपसर्ग करनेका विचार किया। वह अपनी विद्यासे अनेक प्रकारके विशाल वेतालरूपोंको बनाकर मुनिराजको ध्यानसे चलानेके लिए उद्यत हुआ। उन भयानक रूपादिके द्वारा, गर्जना करनेसे, खोटी दृष्टिसे देखनेसे, अट्टहासोंसे, घोर ध्वनि करनेसे, विविध प्रकारके लययुक्त नृत्योंसे, फाड़े हुए मुखोंसे, तीक्ष्ण शस्त्र और मांसको लिए हुए हाथोंसे उस रात्रिमें उसने जगद्गुरुके ध्यानको नष्ट करनेवाला अति दुष्कर उपसर्ग किया। उस उपद्रवके समय वीर मुनिराज मेरु शिखरके समान अचल रहे और उन अनेक उपद्रवोंके द्वारा ध्यानसे रंचमात्र भी विचलित नहीं हुए।

इस तरह जिनका ध्यानमें स्थित मन अनेक उपसर्गोंके द्वारा भी रंचमात्र विकारको नहीं प्राप्त होता है। तब वह रुद्र महावीरको अत्यन्त अचल जान कर लज्जाको प्राप्त होता हुआ उनकी स्तुति करनेके लिए उद्यत हुआ व उसने महावीर प्रभुका नाम **'अतिवीर'** रखा।

इस भाँति ध्यानयोगमें प्रभुने केवलज्ञान प्राप्त कर कार्तिक कृष्णा 14 की पिछली रात्रिको पावापुरीसे निज आत्माके साहजिक स्वरूपको सहजरूपसे धारणकर सिद्धदशाको प्राप्त किया। ऐसे विविध नामके धारी वीरप्रभुको कोटि-कोटि वंदन। उस ही निर्वाण दिनकी स्मृतिमें आजतक निर्वाण महोत्सव 'दीपावली पर्वके रूपमें' मनाया जाता है। यह पर्व स्वर्णपुरीमें पूज्य गुरुदेवश्रीके समयसे ही बड़े उत्साह द्वारा पूजन, भक्ति, प्रवचनों द्वारा मनाया जाता है।

# ऋद्धिवंत मुनि भगवंतों

श्री रामचंद्रजी, लक्ष्मण व सीता लंकाको जीतकर अयोध्या पधारे। श्री भरतने वैराग्यकी प्रचुरतासे मुनिदीक्षा धारण कर ली। तत्पश्चात् अनेक राजा व विद्याधरोंकी प्रार्थनाको मान्य करते हुए श्री रामचंद्रजी व लक्ष्मणजीने एक-दूसरेको राज्याभिषेक करनेका आग्रह किया। अन्तमें अयोध्यामें श्री रामचंद्रजी(बलभद्र) व श्री लक्ष्मणजी(नारायण) दोनोंका राज्याभिषेक हुआ। तत्पश्चात् रामचंद्रजीने विभिषण सुग्रीव आदि सभीको अपना-अपना राज्य सौंप दिया।

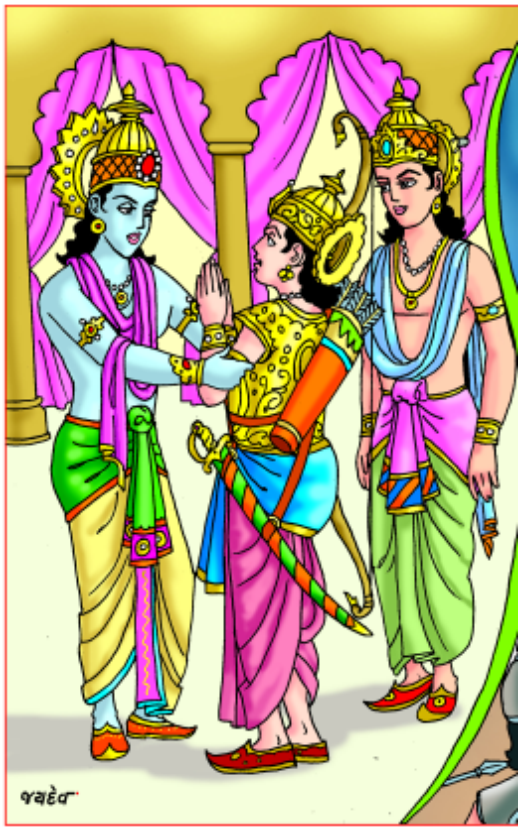

मथुराकी ओर शत्रुघ्नको विदा करते राजा राम व लक्ष्मण

तदनन्तर श्रीरामने भाई शत्रुघ्नसे कहा कि तुम्हें जहाँका राज्य पसंद हो सो बताओ। अयोध्या चाहो तो आधी अयोध्या ले लो। शत्रुघ्नने अत्यन्त विनयपूर्वक मथुराका राज्य मांगा। श्रीरामने कहा कि हे भ्रात! मथुरामें रावणके जमाई 'मधु राजाका राज्य है। वह तथा उसका पुत्र लवणार्णव अत्यन्त पराक्रमी और दुर्जय है, अतएव

मथुराको छोड़कर तुम जो स्थान चाहो उसे ले लो'। तब सुप्रभाके पुत्र शत्रुघ्नको भवान्तरसे मथुरा पर प्रेम होनेसे सहज ही साहसता सह बोला कि 'मुझे तो आप मथुराका ही राज्य प्रदान करें। यदि मैं मधुको मधुके छत्तेकी तरह उसे संग्राममें न तोड़ूँ तो आपका भाई और दशरथका पुत्र नहीं।'

श्रीरामने शत्रुघ्नका आग्रह देख उसे मथुराका राज्य दिया तथा समझाकर कहा कि हे भाई! जब मधुके हाथमें त्रिशूल रत्न न हो तब उससे युद्ध करना। शत्रुघ्नने श्रीरामकी आज्ञा शिरोधार्य की और उन्हें प्रणाम कर माता सुप्रभासे आज्ञा ले अनेक राजाओं सहित शूरवीर योद्धाओंको लेकर रणबादित्र बजाते हुए मथुराकी ओर चले। श्रीराम-लक्ष्मण भी स्नेह-वश तीन कोस तक शत्रुघ्नकी सेनाके साथ गये, फिर वज्रावर्त नामक दिव्य धनुष दे तथा कृतान्तवक्र नामक सेनापतिको उनके साथ कर किंचित् चिन्ता मुक्त दोनों भाई (श्रीराम-लक्ष्मण) अयोध्याको वापिस लौटे।

धीर वीर शत्रुघ्न विशाल सेना सहित मथुराके समीप आये और यमुना नदीके किनारे डेरा डाल समस्त सेनाको ठहराया। शत्रुघ्नने चतुर मंत्रियोंके साथ विचार करके आवश्यक जानकारीके लिए अनेक गुप्तचर मथुरा भेजे। मंत्रीगण परस्पर चर्चा करने लगे कि बालक शत्रुघ्नने जो मधुको जीतनेकी वांछा की है, वह सर्वथा अयोग्य है। त्रिशूल रत्नधारी मधु देव तथा विद्याधरोंसे भी अजेय है, उसे शत्रुघ्न कैसे जीतेगा? तब कृतान्तवक्रने कहा कि जिस शत्रुघ्नके सहायक श्रीराम-लक्ष्मण तथा आप जैसे महापुरुष हैं वह अवश्य ही अमोघ त्रिशूल रत्नसे गर्वित राजा मधुको संग्राममें जीतेगा। मंत्रियोंमें यह चर्चा हो रही थी कि कुछ

गुप्तचरोंने आकर खबर दी कि राजा मधु मथुराके पूर्वकी ओर एक सुन्दर उद्यानमें आठ दिनसे कामान्ध हो समस्त रानियों सहित क्रीड़ामें मग्न है। उसे उसके मंत्रियोंने बहुत समझाया, परन्तु वह उपेक्षा कर कुछ भी ध्यान नहीं देता। मथुरा विजयका यह सर्वोत्तम सुअवसर है।

शत्रुघ्नने अपने बलवान योद्धाओंको साथ ले नगरमें प्रवेश किया और तत्काल मधुकी आयुधशाला पर अपना अधिकार कर लिया। नगर-निवासी अन्य राजाको आया जान अत्यन्त भयभीत तथा व्याकुल हुए परन्तु शत्रुध्नके योद्धाओंने समझाया कि राम-राज्यमें किसीको कोई कष्ट न होगा। सबको धैर्य्य बंधा नगर-निवासीयोंको शान्त किया। मधु नगरमें शत्रुका प्रवेश सुन अत्यन्त कुपित हो उपवनसे नगरको आया परन्तु शत्रुघ्नके सुभटोंके कारण वह नगरमें प्रवेश न कर सका। महाभिमानी एवम् कामान्ध मधु त्रिशूल रहित होने पर भी शत्रुघ्नसे युद्ध करनेको उद्यत हुआ, परस्पर घोर युद्ध हुआ। सेनापति कृतान्तवक्रने मधुके पुत्र लवणार्णवको युद्धमें प्राणरहित कर दिया। मधु पुत्रका मरण देख अत्यन्त कुपित हो हाथी पर चढ़ घोर युद्ध करने लगा। शत्रुघ्नने उसका कवच बाणोंसे तोड़ डाला।

राजा मधुने पुत्रको प्राणरहित तथा स्वयंको त्रिशूल रत्नसे रहित देख शत्रुघ्नको अजेय समझ अपनी आयुको अल्प समझा और हाथी पर बैठा हुआ संसारसे विरक्त हुआ। चारों प्रकारके आहार त्याग सह दीक्षा ग्रहण करके अध्यात्म योगमें आरूढ हुआ। शत्रुघ्न मधुकी यह परम शांत अवस्था देख नमस्कार कर बोला कि हे साधो! मेरा अपराध क्षमा करो। देवगण मधुको वीर-रससे शान्त रसमें एकाएक परिणत हुआ देख अत्यन्त आश्चर्यान्वित हुए तथा शत्रुघ्नने मधुकी स्तुति कर मथुरा नगरमें

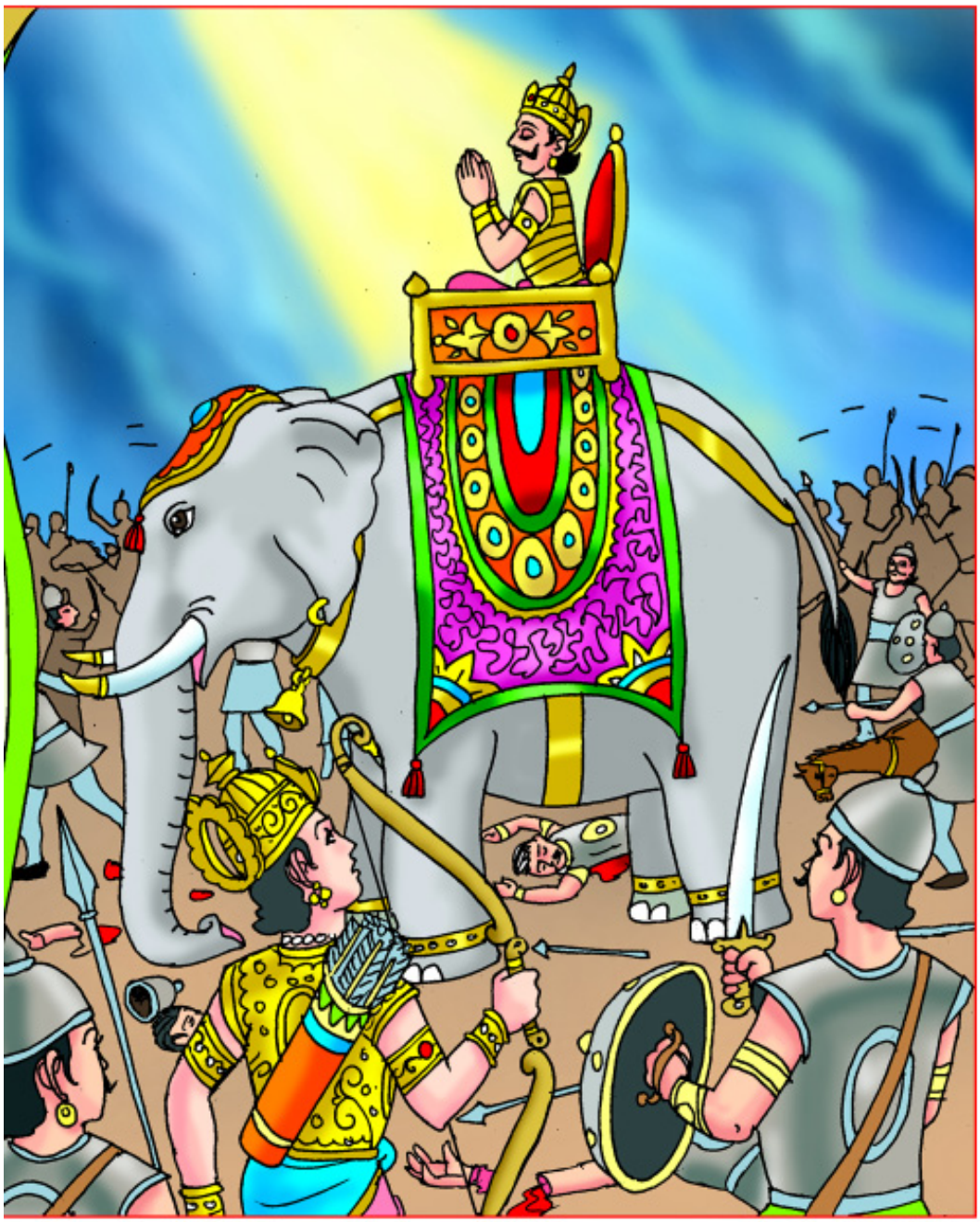

युद्धमें राजा शत्रुघ्नसे राजा मधुने पुत्र लवणार्णवकी मृत्यु व अपना
कवचको तूटता देख आयुकी अल्पता जान हाथी पर ही वैराग्य प्राप्त होते हुए....।

प्रवेश किया। धीर-वीर मधु क्षणमात्रमें समाधि-मरण कर तीसरे स्वर्ग (सनतकुमार)में उत्कृष्ट देव हुआ।

राजा मधुके स्वर्ग जाने पर, चमरेन्द्र प्रदत्त त्रिशूल-रत्नको लेकर उसका अधिष्ठाता देव अपने स्वामी चमरेन्द्रके पास गया। मधुके मरणका वृत्तान्त सुन चमरेन्द्र अत्यन्त क्रोधित हो पाताल-लोकसे निकल कर शत्रुघ्नसे बदला लेने मथुरा जानेको उद्यत हुआ। इसे अचानक क्रोधित देख गरुडेन्द्रने कहा कि हे देव! किस कारण क्रोध कर गमन कर रहे हो? तब उसने अपने परम मित्र मधुके मरणका वृत्तांत सुनाकर कहा कि मैं शत्रुघ्नसे अपने मित्रका बदला लेने मथुरा जा रहा हूँ। तब गरुडेन्द्रने विशल्याके प्रभावका स्मरण करा, चमरेन्द्रको मथुरा जानेसे मना किया। चमरेन्द्रने कहा कि अखण्ड ब्रह्मचर्यके प्रसादसे विशल्यामें जो असाधारण शक्ति थी वह वासुदेव लक्ष्मणके साथ संयोग होनेसे नष्ट हो चुकी। ऐसा कह चमरेन्द्र मथुरामें आया। कुपित हो नगरमें महामारी नामक

त्रिशुलके अधिष्ठाता देव चमरेन्द्र द्वारा मथुरा नगरीमें महामारी रोग व दुर्भिक्ष.....।

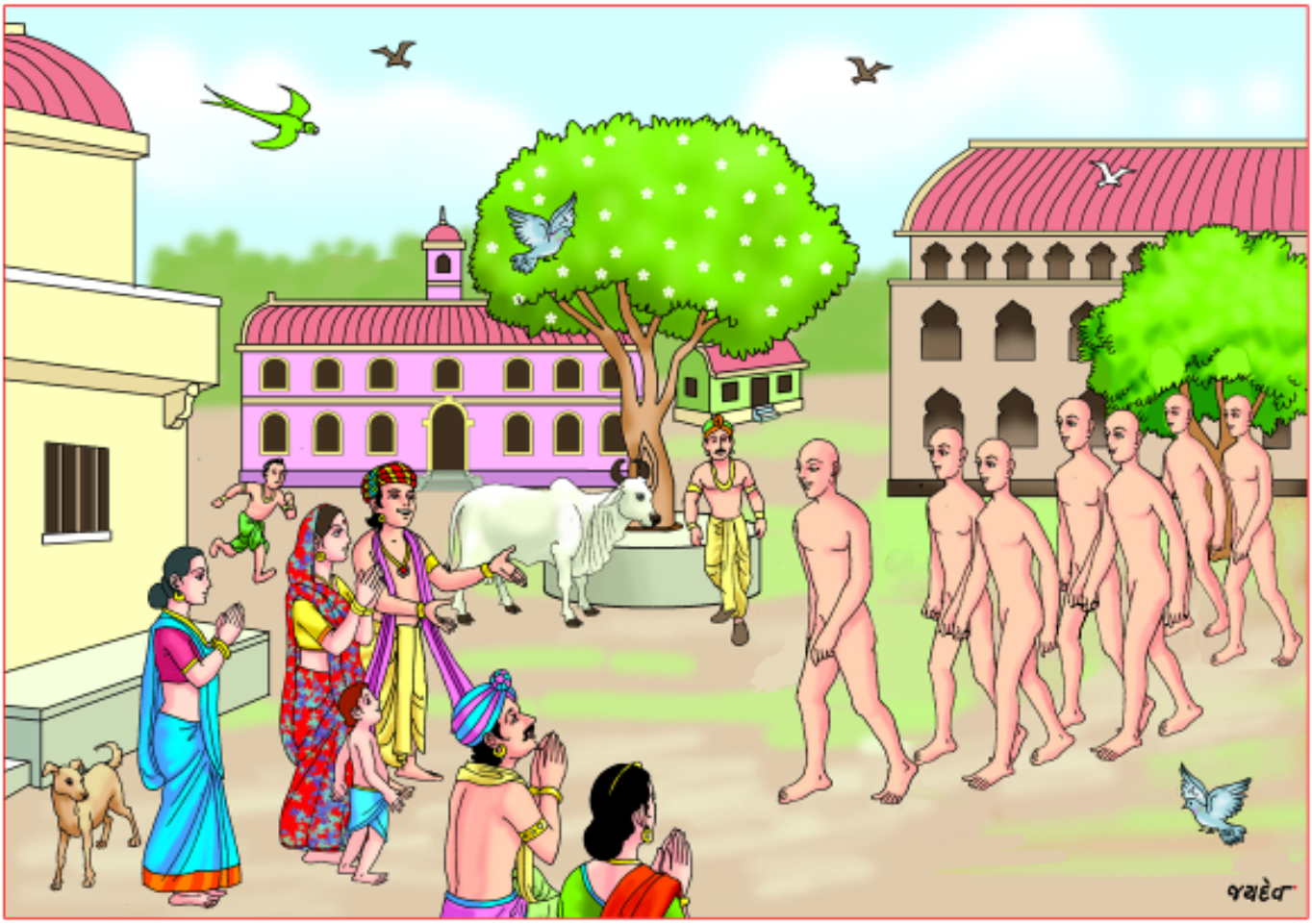

सुरमन्यु, श्रीमन्यु, श्रीनिचय, सर्वसुन्दर, जयवान्, विनयमालस व जयमित्र नामक
सप्त चारणऋद्धिधारी मुनियोंका मथुरामें प्रवेशसे चमरेन्द्र कृत महामारी रोग व दुर्भिक्ष दूर होता है।

महाभयानक रोग तथा दुर्भिक्ष का प्रसार किया। जिससे जो जहाँ जैसे बैठे थे वहीं मृत्युके ग्रास हुए। यद्यपि मथुरा देवपुरी समान थी तथापि शत्रुघ्न यहाँ राम-सीता बिना उदास थे और मरी रोग भी फैल गया था अतः प्रजावत्सल शत्रुघ्न अत्यंत चिंतित थे।

जब मथुरामें मरी रोगसे समस्त प्रजा पीड़ित होकर मर रही थी तब राजा श्रीनन्दनकी रानी धरणी सुन्दरीके (सुरमन्यु, श्रीमन्यु, श्रीनिचय, सर्वसुन्दर, जयवान, विनयमालस तथा जयमित्र) सात पुत्र जो कि अपने पिता श्रीनन्दनके साथ मुनि हुए थे तथा श्रीनन्दनने मोक्ष प्राप्त कीया और ये सातों भाई घोर तप कर चारण-ऋद्धिधारी हुए। चातुर्मास प्रारम्भ होनेवाला था अतएव मथुराके वनमें आए और वटवृक्षके नीचे विराजमान हुए। ये सातों ऋषि चारण-ऋद्धिके प्रभावसे आकाश-मार्ग द्वारा क्षणभरमें

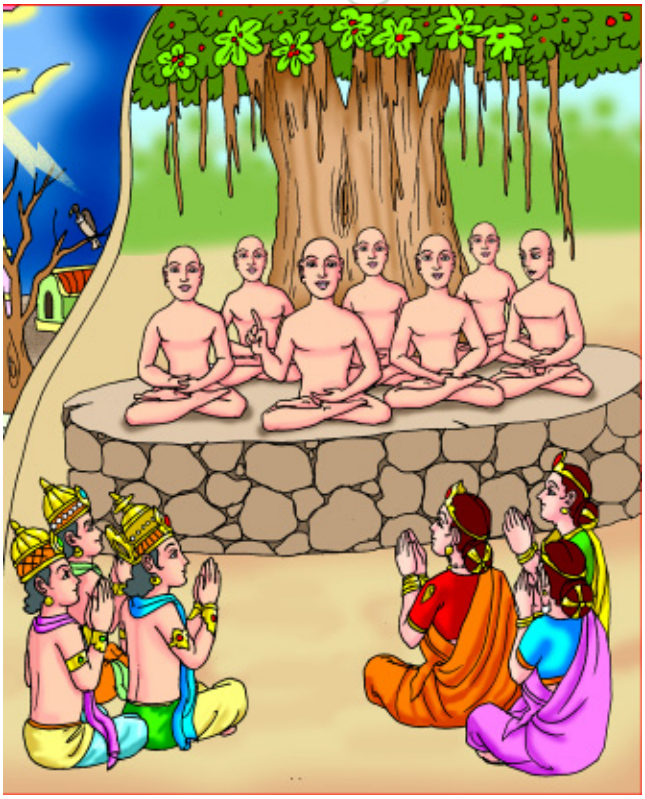

राजा शत्रुघ्न, रानी, माता सुप्रभा व मंत्रियों सह
सप्त-ऋषि मुनिओंसे जंगलमें धर्मोपदेश सुनते हुए...।

नगरमें पहुँच आहार ग्रहण कर पुनः अपने स्थान पर आ जाते थे। इन सप्त-ऋषियोंके प्रभावसे नगरके चमरेन्द्रकृत मरी रोगका अन्त हो गया।

शत्रुघ्न भी माता सुप्रभा सहित मुनियोंकी बन्दनाको गए। मुनियोंके मुखसे धर्म श्रवण कर उन्होंने उनसे अत्यन्त विनयपूर्वक प्रार्थना कि हे भगवन्! आपके पवित्र आगमनसे इस नगरसे मरी रोग तथा दुर्भिक्ष दूर हुआ। समस्त नगर सुभिक्षमय एवम् समृद्धि-सम्पन्न हुआ, अतएव कृपाकर कुछ दिन और यहाँ तिष्ठिये। शत्रुघ्नकी प्रार्थना सुनकर मुनियोंने कहा कि जिनाज्ञानुसार हमारा यहाँ अधिक रहना योग्य नहीं है। अब भविष्यमें इस भरतक्षेत्रमें नमिनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ और महावीरस्वामी ये चार तीर्थंकर क्रमशः और होंगे जिनके द्वारा संसारके अनन्त जीवोंका कल्याण होगा।

❀

(चाल-पनिहारी)

सप्त-ऋषिके गुणनिको धी तुछ धारी हो, कोलौं करै बखान।
सहसजीभतें इन्द्र भी मुनिवरको नहिं कर सकै बखान।
अब मेरी यह विनति श्रीमुनिवरजी, सुन लीज्यो ऋषिराज।
जोलौं शिव पाऊँ नहीं मुनिवरजी, तोलौं दरश दिखाय।

(चाल आगमकी )

ऐसे मुनि तिष्ठत जहां तहां मरी आदि सब रोगाजी।
सिंह सर्प डाकिनी शाकिनी नाशै भूत प्रेत सब शोकाजी॥
ऐसे गुरु हमको मिलें तब होवे मम निस्तारो जी।
यातें मुनि-चरणन विषैं अब लाग्यो ध्यान हमारो जी॥

# भगवान नमिनाथका वैराग्य

जम्बूद्वीपके भरतक्षेत्रमें वत्स नामका एक देश है, उसकी कौशाम्बी नगरीमें किसी समय पार्थिव नामका राजा राज्य करता था। राजा पार्थिवकी पटरानीका नाम सुन्दरी था। ये दोनों राज-दम्पत्ति सुखसे काल व्यतित करते थे। कुछ समय बाद इनके सिद्धार्थ नामका पुत्र उत्पन्न हुआ। सिद्धार्थ बड़ा ही होनहार बालक था। जब वह बड़ा हुआ, तब राजा पार्थिवने उसे युवराज बना दिया। एक दिन पार्थिव महाराज मनोहर नामके उद्यानमें घूम रहे थे। वहीं पर उन्हें मुनिवर नामक एक साधुके दर्शन हुए। राजाने उन्हें भक्तिपूर्वक मस्तक झुकाकर नमस्कार किया और उनके मुखसे धर्मका स्वरूप सुना। धर्मका स्वरूप सुनकर अपने पूर्व-भव पूछे। तब मुनिवर मुनिराजने अवधिज्ञानरूपी नेत्रोंसे स्पष्ट देखकर उसके पूर्व-भव कहे। अपने पूर्व-भवोंका वृत्तान्त जानकर राजा पार्थिवको वैराग्य उत्पन्न हो गया। उसने घर आकर युवराज सिद्धार्थको राज्य दिया और फिर वनमें पहुँचकर उन्हीं मुनिराजके पास भगवती जिन-दीक्षा ले ली।

इधर सिद्धार्थ भी पिताका राज्य पाकर बड़ी कुशलतासे प्रजाका पालन करने लगा। कालक्रमसे सिद्धार्थके श्रीदत्त नामका एक पुत्र हुआ, जो अपने शुभ–लक्षणोंसे महापुरुष प्रतीत होता था। एक समय राजा सिद्धार्थको अपने पिता पार्थिव मुनिराजके समाधिमरणका समाचार मिला, जिससे वह उसी समय विषयोंसे विरक्त होकर मनोहर नामक वनमें गया और वहाँ महाबल नामक केवलीके दर्शन कर उनसे सात तत्त्वोंका स्वरूप पूछने लगा। केवलीश्वर महाबल भगवानके उपदेशसे उसका वैराग्य पहिलेसे अधिक बढ़ गया। इसलिए वह युवराज श्रीदत्तको राज्य देकर उन्हीं केवली

भगवानकी चरण-छायामें दीक्षित हो गया। उनके पास रहकर उसने क्षायिक सम्यग्दर्शन प्राप्त किया, ग्यारह अंगोंका अध्ययन किया और विशुद्ध हृदयसे दर्शन-विशुद्धि आदि सोलहकारण भावनाओंका चिन्तवन कर 'तीर्थंकर' नामक महान पुण्य प्रकृतिका बंध किया तथा आयुके अन्तमें समाधि-मरण धारण कर 'अपराजित' नामक विमानमें अहमिन्द्र हुए। वहाँ उनकी आयु तैंतीस सागरकी थी। शरीर एक हाथ ऊँचा था, शुक्ल लेश्या थी। तैंतीस हजार वर्ष बाद मानसिक आहार लेते थे और तैंतीस पक्ष बाद श्वासोच्छवास ग्रहण करते थे। वहां वह अपने अवधिज्ञानसे सप्तम नरक तककी स्थिति स्पष्ट जान लेते थे।

वहाँ अपराजित विमानमें अहमिन्द्रके भवमें अनेक तरहके सुख भोगते हुए जब उन अहमिन्द्रकी आयु केवल छह मासकी शेष रह गई और वह भूतल पर अवतार लेनेके लिए उद्यत हुए। तब इसी भरतक्षेत्रमें अंग (बिहार) देशकी मिथिला नगरीमें इक्ष्वाकुवंशीय महाराज श्रीविजय राज्य करते थे, जो अपने समयके अद्वितीय शूर-वीर थे। उनकी महारानीका नाम विप्पला था। देवोंने उनके घर पर रत्नोंकी वर्षा की और 'श्री', 'ह्री' आदि देवियोंने मन-वचन-कायसे माताकी सेवा की। माताने आश्विन कृष्णा द्वितीयाके दिन अश्विनी नक्षत्रमें रात्रिके पिछले भागमें हाथी आदि सोलह स्वप्न देखे। उसी समय उक्त अहमिन्द्रने अपराजित विमानसे चयकर उसके गर्भमें प्रवेश किया। प्रातः होते ही जब विप्पला रानीने पतिदेवश्री विजयसे स्वप्नोंका फल पूछा, तब उन्होंने कहा—'आज तुम्हारे गर्भमें त्रिभुवननायक तीर्थंकर भगवानने प्रवेश किया है। ये सोलह स्वप्न और यह रत्नोंकी अविरल वर्षा ये माहात्म्य प्रकट कर रही हैं'। प्रातः होते ही इन्द्रोंने देवों सह आकर मिथिलापुरीकी तीन प्रदक्षिणायें दी और फिर राज-भवनमें जाकर महाराज श्री विजय और विप्पलादेवीकी स्तुति की तथा अनेक वस्त्राभूषण भेंट कर उन्हें प्रमुदित किया।'

भगवान मुनिसुव्रतनाथके मोक्ष जानेके साठ लाख वर्ष बीत जाने पर नमिनाथजीका अवतार हुआ था। इनकी आयु भी इसीमें युक्त है। इनकी आयु दश हजार वर्षकी थी। शरीर पन्द्रह धनुष ऊँचा था और शरीरका रंग तपाये हुए सुवर्णकी तरह था। कुमारकालके पच्चीस सौ वर्ष बीत जाने पर उन्हें राजगद्दी दे कर पिता श्रीविजय महाराज आत्मकल्याणकी ओर अग्रसर हुए। भगवान नमिनाथने राज्य पाकर दुष्टोंका निग्रह और साधुओं पर अनुग्रह किया। बीच-बीचमें देव लोग संगीत तथा गोष्ठि आदिसे उनका मन प्रसन्न रखते थे। इस तरह सुखपूर्वक राज्य करते हुए उन्हें पाँच हजार वर्ष बीत गये।

एकदिन जब कि आकाश वर्षाऋतुके बादलोंके समूहसे व्याप्त हो रहा था तब महान् अभ्युदयके धारक भगवान् नमिनाथ दूसरे सूर्यके समान हाथीके कन्धेपर आरूढ़ होकर वन-विहारके लिए गये। उसी समय आकाशमार्गसे आये हुए दो देवकुमार हस्तकमल जोड़कर नमस्कार करते हुए इस प्रकार प्रार्थना करने लगे। वे कहने लगे कि ''इसी जम्बूद्वीपके पूर्व विदेहक्षेत्रमें एक वत्सकावती नामका देश है। उसकी सुसीमा नगरीमें अपराजित विमानसे अवतार लेकर अपराजित नामके तीर्थंकर उत्पन्न हुए हैं। उनके केवलज्ञानकी पूजाके लिए सब इन्द्र आदि देव आये थे। उनकी सभामें प्रश्न हुआ कि 'क्या इस समय भरतक्षेत्रमें भी कोई तीर्थंकर हैं?' सर्वदर्शी अपराजित भगवानने उत्तर दिया कि इस समय बंगदेशके मिथिलानगरीमें नमिनाथ स्वामी अपराजित विमानसे अवतीर्ण हुए हैं वे अपने पुण्योंदयसे तीर्थंकर होनेवाले हैं। इस समय वे देवोंके द्वारा लाये हुए भोगोंका उपभोग कर रहे हैं—गृहस्थावस्थामें विद्यमान हैं।'' हे देव! हम दोनों अपने पूर्व जन्ममें घातकीखड द्वीपके रहनेवाले थे, वहाँ तपश्चरण कर सौधर्म नामक स्वर्गमें उत्पन्न हुए हैं। दूसरे दिन हमलोग अपराजित केवलीकी पूजाके लिए गये थे। वहाँ उनके वचन सुननेसे पूजनीय आपके दर्शन करनेके कौतुकवश यहाँ आये हैं।

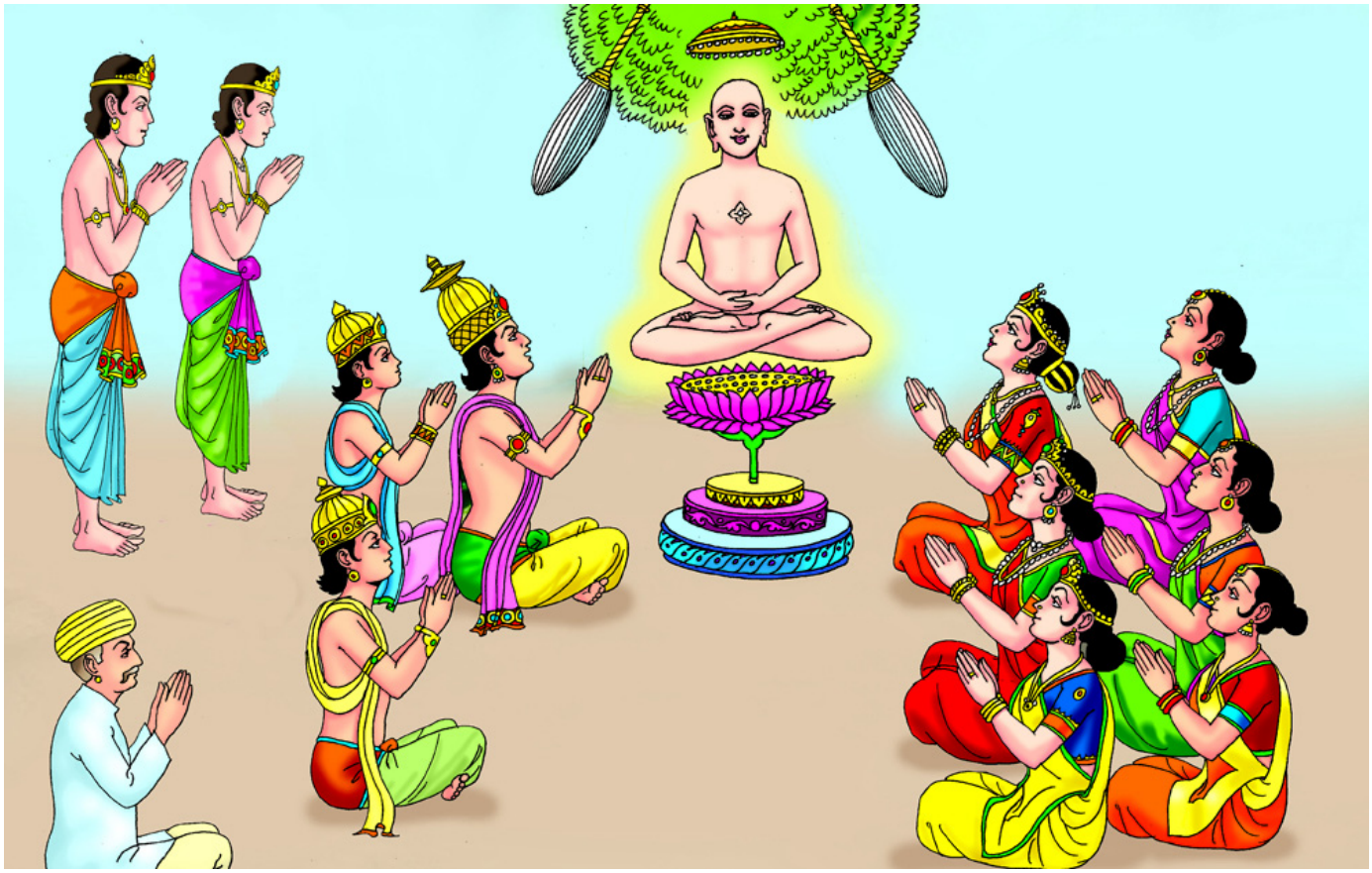

विदेहक्षेत्रके तीर्थंकर अपराजितकी सभामें इन्द्र द्वारा किए गए प्रश्नका उत्तर सुनते हुए दो देव

अपराजित तीर्थंकरकी सभामें भरतक्षेत्रके नमिनाथ तीर्थंकरका वृत्तांत सुनकर दो देव कौतुहलवश नमिनाथ राजाके वनविहारके समय उनके दर्शन हेतु आते है।

जिन्हें निकटकालमें ही केवलज्ञानकी प्राप्ति होनेवाली है ऐसे भगवान् नमिनाथ, देवोंकी समस्त बातोंको हृदयमें धारण कर नगरमें लौट आये। वहाँ वे विदेहक्षेत्रके अपराजित तीर्थंकर तथा उनके साथ अपने पूर्वभवके सम्बन्धका स्मरण कर संसारमें होनेवाले भावोंका बार-बार विचार करने लगे। वे विचार करने लगे कि 'इस आत्माने अपने आपके द्वारा अनादिकालसे चले आये बन्धनोंसे अच्छी तरह जकड़कर शरीररूपी जेलखानेमें डाल रखा है और जिस प्रकार 'पिंजड़ेके भीतर पापी पक्षी दुःखी होता है' अथवा 'आलान–खम्भेसे बँधा हुआ हाथी दुःखी होता है' उसी प्रकार यह आत्मा निरन्तर दुःखी रहता है। यह यद्यपि नाना दुःखोंको भोगता है तो भी उन्हीं दुःखोंमें राग करता है। रति नोकषायके अत्यन्त तीव्र उदयसे वह इन्द्रियोंके विषयमें आसक्त रहता है और विष्टाके कीड़ेके समान अपवित्र पदार्थोंमें तृष्णा बढ़ाता रहता है। यह प्राणी मृत्युसे डरता है किन्तु उसी ओर दौड़ता है, दुःखोंसे छूटना चाहता है किन्तु उनका ही संचय करता है। हाय-हाय! बड़े दुःखकी बात है कि आर्त और रौद्र ध्यानसे उत्पन्न हुई तृष्णासे इस जीवकी बुद्धि विपरीत हो गई है। यह बिना किसी विश्रामके चतुर्गतिरूप भवमें भ्रमण करता है और पापके उदयसे दुःखी होता रहता है। इष्ट अर्थका विघात करनेवाली, दृढ़ और अनादिकालसे चली इस मूर्खताको धिक्कार हो।'

इस प्रकार वैराग्यके संयोगसे वे भोग तथा रागसे बहुत दूर हुए। उन्होंने सुप्रभ नामक पुत्रको अपना राज्य-भार सौंप दिया। उसी समय सारस्वत आदि समस्त लौकांतिक देवोंने उनकी पूजा की। तदनन्तर देवोंके द्वारा किये हुए अभिषेकके साथ-साथ दीक्षा-कल्याणकका उत्सव प्राप्त कर वे उत्तरकुरु नामकी मनोहर पालकीपर सवार हो चैत्रवन नामक उद्यानमें गये। कर्मोंका क्षयोपशम होनेसे उनके प्रशस्त संज्वलनका उदय हो गया अर्थात् प्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभका

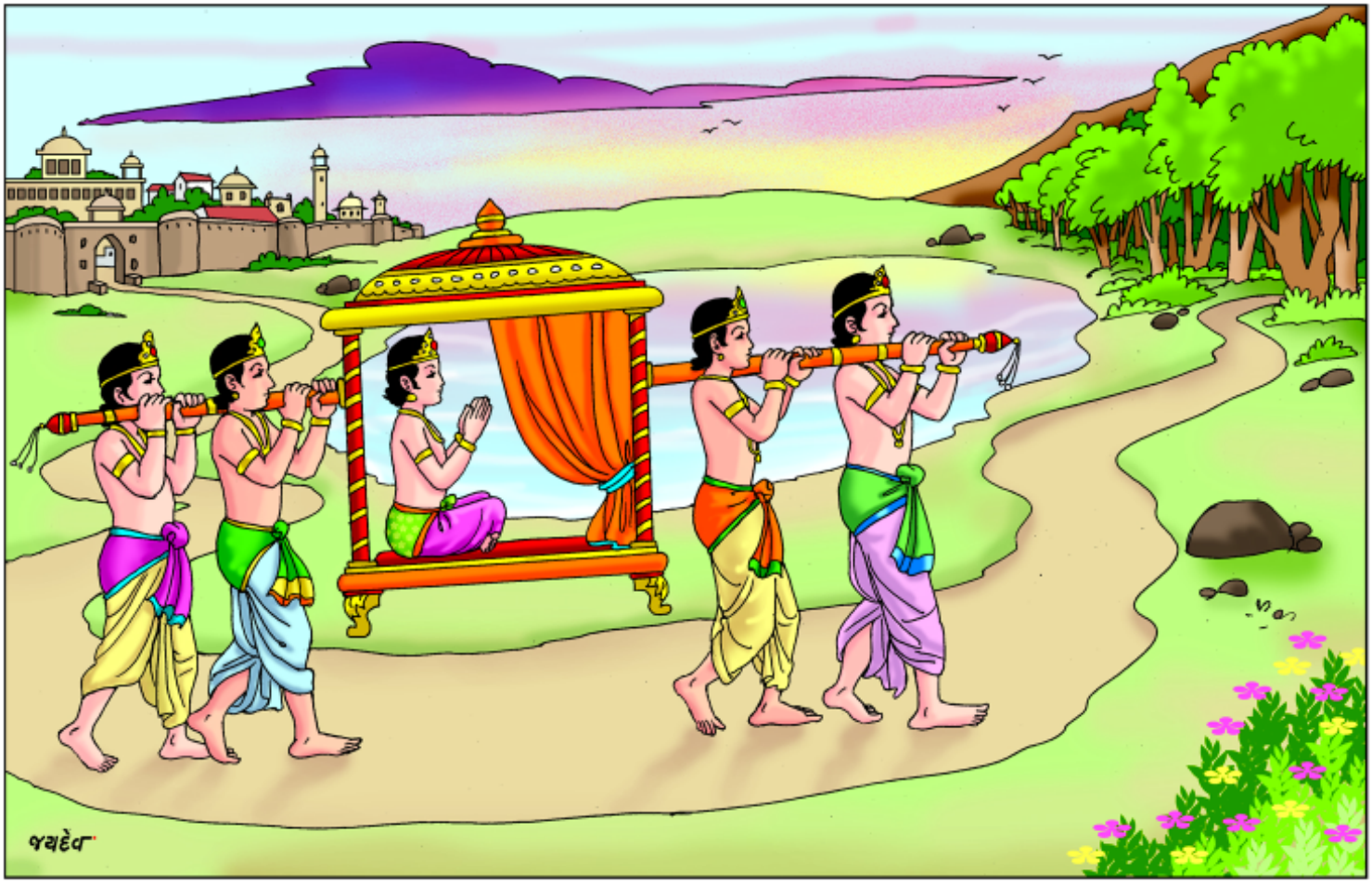

वैरागी नमिनाथ भगवती जिनदीक्षा हेतु जाते हुए....।

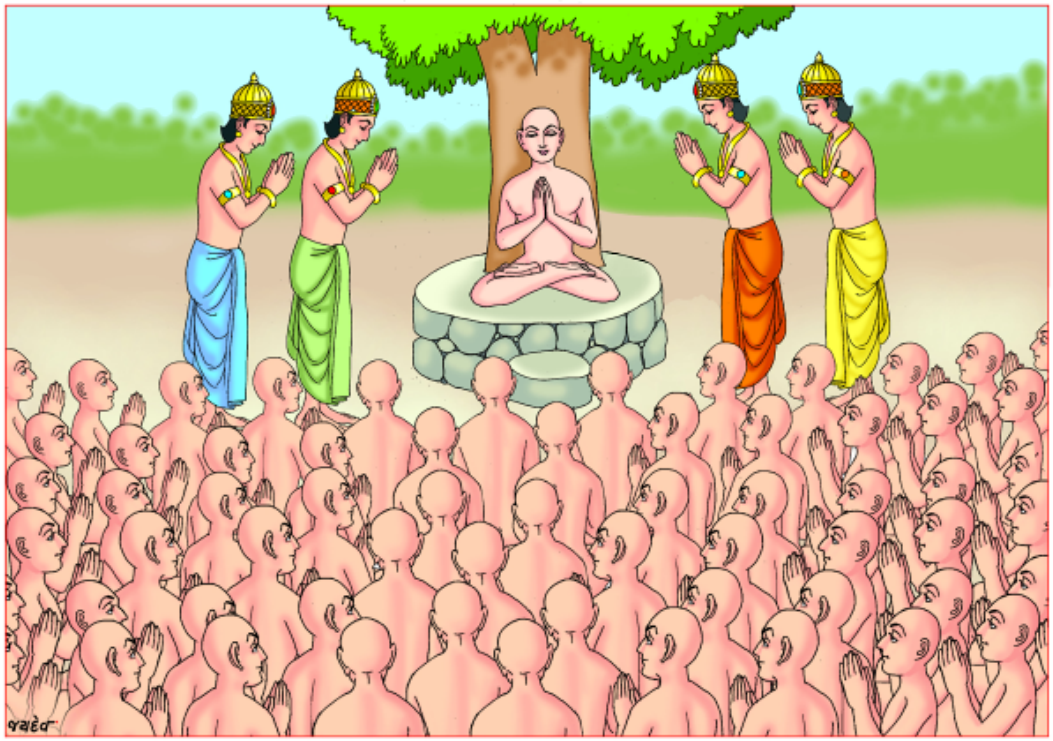

भगवान नमिनाथका एक हजार राजाओं सह भगवती जिनदीक्षा लेते हुए।

क्षयोपशम और संज्वलन क्रोध, मान, माया, लोभका मन्द उदय रह गया जिससे वैराग्य प्राप्त कर वहाँ उन्होंने बेलाका नियम लेकर आषाढ़कृष्ण दशमीके दिन अश्विनी नक्षत्रमें सायंकालके समय एक हजार राजाओंके साथ संयम धारण कर लिया और उसी समय संयमी जीवोंके प्राप्त करनेयोग्य चतुर्थ मनःपर्ययज्ञान भी प्राप्त कर लिया।

आहारके हेतु भगवान् वीरपुर नामक नगरमें गये वहाँ सुवर्णके समान कान्तिवाले राजा दत्तने उन्हें आहारदान देकर पंचाश्चर्य प्राप्त किये। तदन्तर जब छद्मस्थ अवस्थाके नव वर्ष बीत गये तब वे एक दिन अपने दीक्षावनमें मनोहर बकुल वृक्षके नीचे बेलाका नियम लेकर ध्यानारूढ़ हुए। वहीं पर उन्हें मार्गशीर्ष शुक्लपक्षकी तीसरी नन्दा तिथि अर्थात् एकादशीके दिन सायंकालके समय समस्त पदार्थोंको प्रकाशित

करनेवाला केवलज्ञान उत्पन्न हुआ—उसी समय इन्द्र आदि देवोंने चतुर्थ ज्ञानकल्याणकका उत्सव किया। सुप्रभार्य आदि उनके सत्रह गणधर थे। चारसौ पचास समस्त पूर्वोंके जानकार श्रुतकेवली थे, बारह हजार छह सौ अच्छे व्रतोंको धारण करनेवाले शिक्षक(आचार्य) थे, एक हजार छह सौ अवधिज्ञानके धारकों(मुनिराज)की संख्या थी, इतने ही अर्थात् एक हजार छह सौ ही केवलज्ञानी थे, पन्द्रह सौ विक्रियाऋद्धिके धारक थे, बारह सौ पचास परिग्रह रहित मनःपर्ययज्ञानी थे और एक हजार वादी थे। इस तरह मुनियोंकी संख्या बीस हजार थी। मंगिनी आदि पैंतालीस हजार आर्यिकाएँ थी, एक लाख श्रावक थे, तीन लाख श्राविकाएँ थीं, असंख्यात देव-देवियाँ थीं और संख्यात तिर्यंच थे। इस प्रकार समीचीन धर्मका उपदेश करते हुए भगवान नमिनाथने बारह सभाओंके साथ आर्यक्षेत्रमें सब ओर विहार किया।

जब उनकी आयुका एक माह बाकी रह गया तब वे विहार बन्द कर सम्मेदशिखर पर जा विराजमान हुए। वहाँ उन्होंने एक हजार मुनियोंके साथ प्रतिमा योग धारण कर लिया और वैशाख कृष्ण चतुर्दशीके दिन रात्रिके अन्तिम समय अश्विनी नक्षत्रमें मोक्ष प्राप्त कर लिया। उसी समय देवोंने आकर सबके स्वामी श्री नमिनाथ तीर्थंकरका—निर्वाणकल्याणकका उत्सव किया और तदनन्तर पुण्यरूपी पदार्थको प्राप्त हुए सब देव अपने स्थान पर चले गये।

जिनका शरीर सुवर्णके समान देदीप्यमान था, जिन्होंने घातिया कर्मोंके साथ युद्ध किया था, समस्त अहितोंको जीता था अथवा विजय प्राप्त की थी, नम्रीभूत देव जय-जय करते हुए जिनकी स्तुति करते थे, जो विद्वान् शिष्योंके स्वामी थे और अन्तमें जिन्होंने शरीर नष्ट कर दिया था—मोक्ष प्राप्त किया था वे श्री नमिनाथ स्वामी हम सबके संसार सम्बन्धी बहुत भारी भयको नष्ट करें।

# ऋषभदेवको पूर्वभवमें सम्यक्त्वकी प्राप्ति

भगवान श्री ऋषभदेवका आत्मा पूर्व 10वें भवमें महाबल राजा थे। उस भवमें उनके स्वयंबुद्ध मंत्रीने मुनिराजके वचनों द्वारा अपने राजा महाबलको सम्बोन्धन किया। जिससे राजाको ज्ञात हुआ कि उनकी मात्र

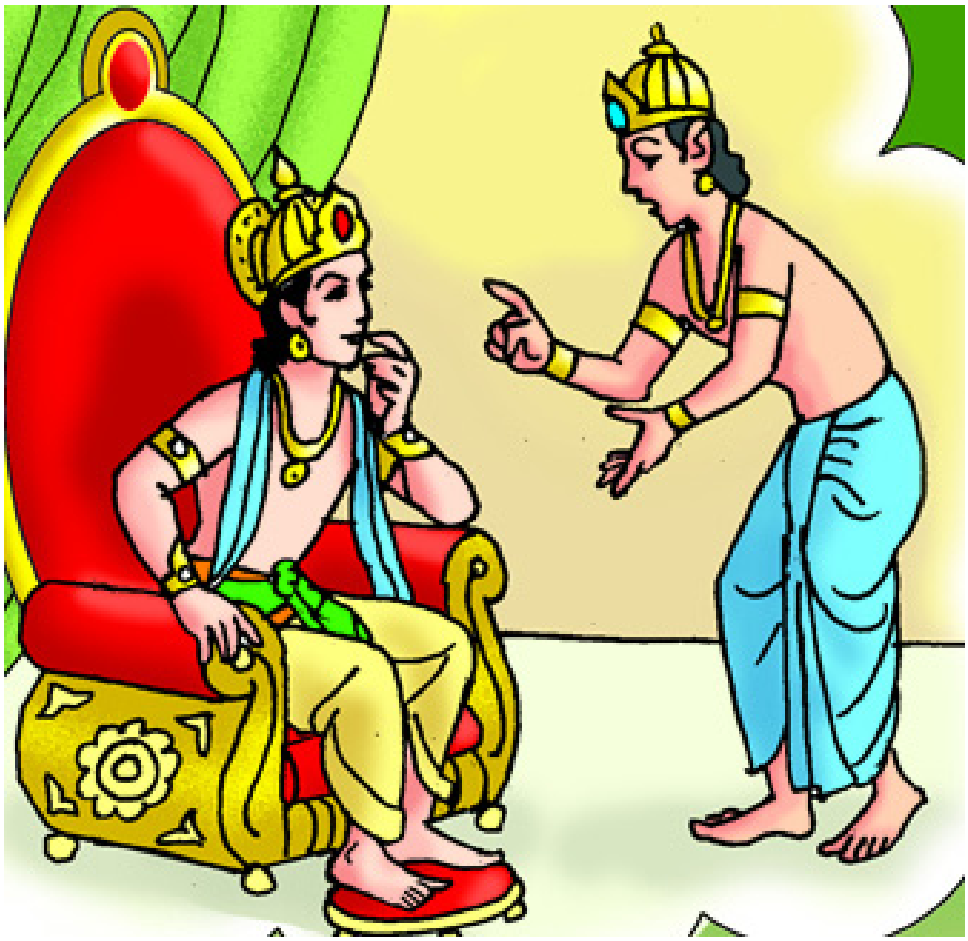

राजा महाबलको स्वयंबुद्ध मंत्री द्वारा संबोधन

'एक माहकी आयुष्य ही बाकी रही है'। राजाको इस बातका पूर्णतया विश्वास हो गया। अतः राजा धर्मकार्यमें जुट गये। अन्तमें समाधिमरण युक्त धर्मभावनासे ललितांग देव हुए। वहाँ उनकी देवी स्वयंप्रभा थी।

(इस कथा हेतु देखें – ''जैन पौराणिक लघुकथाएँ भाग-१ पृष्ठ-११)

तत्पश्चात् ये दोनों देव-देवी जम्बूद्वीपके विदेहक्षेत्रकी भिन्न-भिन्न नगरीमें वज्रजंघ और श्रीमती नामक क्रमशः राजकुंवर–राजकुँवरी हुए। इसी भवमें दोनोंने राजा-रानी होकर मुनिराजको भक्तिसे आहार दिया। इस आहारदानके फलस्वरूप उन दोंनोंने भोगभूमिमें जन्म लिया उसका विवरण इस प्रकार है।

जम्बूद्वीपके सुदर्शन मेरु पर्वतसे उत्तरकी ओर एक उत्तरकुरु नामका सुहावना क्षेत्र है। वह क्षेत्र खूब हरा-भरा रहता है। वहाँ दस तरहके कल्पवृक्ष हैं, जो कि वहाँके मनुष्योंको हर प्रकारकी खाने, पीने, पहनने, रहने आदिकी सुन्दर सामग्री दिया करते हैं। वहाँ स्वच्छ जलसे भरे हुए सुन्दर सरोवर हैं, जिनमें बड़े-बड़े सुन्दर कमल फूल रहे हैं। वनकी भूमि हरी-हरी घाससे शोभायमान है। वहाँके नर-नारियाँ तथा पशु-पक्षियोंकी आयु तीन पल्य प्रमाण होती है और आजीवन किसी को कोई बिमारी नहीं होती। यदि संक्षेपमें वहाँके मनुष्योंके सुखोंका वर्णन पूछा जावे, तो यही उत्तर पर्याप्त होगा कि वहाँके मनुष्योंको जो सुख प्राप्त है, वह और कहीं पर नहीं है और जो सब जगह है, उससे बढ़कर सुख वहाँ है। जो जीव सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्रसे विभूषित उत्तम पात्र ऐसे मुनियोंके लिये भक्तिसे आहार देते हैं, वे ही मरकर वहाँ जन्म लेते हैं। राजा वज्रजंघ और श्रीमतीने भी पुण्डरीकिणीपुरीको जाते समय सरोवरके तट पर मुनिराजको आहार-दान दिया था; इसलिए वे दोनों मरकर ऊपर कहे हुए उत्तर कुरुक्षेत्रमें उत्तम आर्य और आर्या हुए। पूर्वमें जो वज्रजंघ

महाराजा वज्रजंघ व श्रीमती मुनिराजको आहारदान देते हुए व
उसी समय बन्दर आदि चार जीव अनुमोदना करते हुए ।

और श्रीमतीके साथमें थे वे नेवला, व्याघ्र, सूअर और बन्दर भी उसी कुरुक्षेत्रमें आर्य हुए, कारण कि उन सबने मुनिराजको आहारदानकी अनुमोदना की थी। उसके फलस्वरूप वे सभी वहाँ पर मनवांछित भोग भोगते हुए सुखसे रहने लगे।

एक दिन उत्तरकुरुक्षेत्रमें आर्य और आर्या, जो कि राजा वज्रजंघ और श्रीमतीके जीव थे, कल्पवृक्षके नीचे बैठे हुए क्रीड़ा कर रहे थे। ऐसेमें आकाशमें जा रहे सूर्यप्रभदेवका विमान देखकर उन दोंनोंको जातिस्मरणज्ञान हुआ। पूर्वभवके स्मरणसे दोनों ही वैराग्यमय होकर संसारके दु:खोंका विचार कर रहे थे। इतनेमें वहाँ पर आकाशमार्गसे विहार करते हुए दो मुनिराज पधारे। आर्य दम्पतिने खड़े होकर उनका स्वागत किया और उनके चरणोंमें नमस्कार कर पूछा–हे मुनीन्द्र! आप लोगोंका क्या नाम है। आप कहाँसे आ रहे हैं और इस भोगभूमिमें किसलिए पधारे हैं? आपकी शान्तमुद्रा देखकर हमारा हृदय भक्तिसे उमड़ रहा है। कृपा कर कहिये, आप कौन है? यह सुनकर मुनियोंमें जो बड़े मुनि थे वे बोले –आर्य! पूर्व-भवमें तुम महाबल राजा थे, तब मैं तुम्हारा स्वयंबुद्ध नामक मंत्री था। उस भवमें मैंने ही तुमको जैनधर्मका उपदेश दिया था। तब तुम बाईस दिनका संन्यास धारण कर स्वर्ग चले गये थे, उसी समय तुम्हारे विरहसे दु:खी होकर मैंने जिन-दीक्षा धारण कर ली थी, जिसके प्रभावसे मैं आयुके अन्तमें मरकर सौधर्म स्वर्गके स्वयंप्रभ विमानमें मणिचूल(अपरनाम रत्नचूल) नामका देव हुआ। वहाँसे चयकर जम्बूद्वीपके पूर्व विदेह सम्बन्धी पुष्कलावती देशमें स्थित पुण्डरीकिणी नगरीमें सुन्दरी और प्रियसेन नामके राज-दम्पत्तिके प्रीतिङ्कर नामसे प्रसिद्ध ज्येष्ठ पुत्र हुआ। मैं प्रीतिदेव नामक अपने छोटेभाईके साथ अल्पवयमें ही स्वयंप्रभ जिनेन्द्रके समीप दीक्षित हो गया। तीव्र तपके प्रभावसे हम लोगोंको

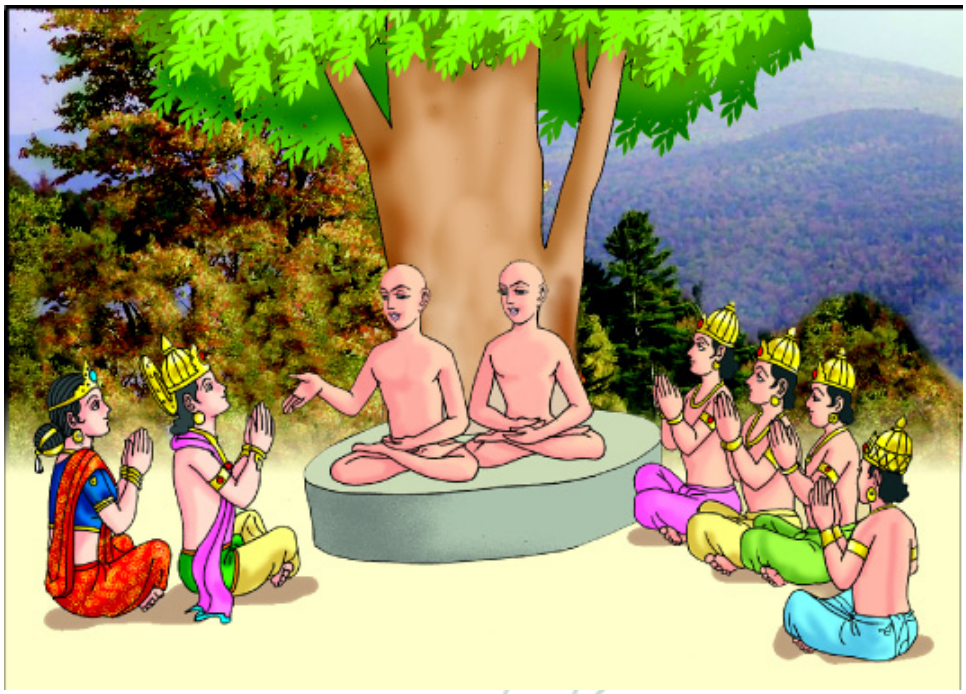

प्रीतिंकर व प्रीतिदेव नामक चारण ऋद्धिधारी मुनिराज द्वारा आर्य व आर्या तथा पूर्वभवके आहारदानका अनुमोदन करनेवाले चार जीवोंको सम्यक्त्वप्राप्ति हेतु संबोधन।

आकाशमें चलनेकी शक्ति और अवधिज्ञान प्राप्त है। जब मुझे अवधिज्ञानसे मालूम हुआ कि आप यहाँ पर उत्पन्न हुए हैं, तब मैं आपको धर्म समझानेके लिए आया हूँ। यह जो मेरे साथ है वह मेरा छोटा भाई प्रीतिदेव है। हे भव्य! विषयाभिलाषाकी प्रबलतासे महाबल पर्यायमें आपको निर्मल सम्यग्दर्शन प्राप्त नहीं हुआ था; इसलिए आज निर्मल सम्यग्दर्शनको धारण करो। यह दर्शन ही संसारके समस्त दुःखोंको दूर करता है। जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा और मोक्ष—इन सात तत्त्वोंका तथा दयामय धर्मका सच्चे दिलसे विश्वास करना ही सम्यग्दर्शन है। सदैव निःशंक रहना, भोगोंसे उदासीन रहना, ग्लानिको जीतना दूसरोंके दोष छिपाना, धर्मसे गिरते हुए को सहारा देना, धर्मात्माओंसे प्रेम रखना और सम्यग्ज्ञानकी प्रभावना करना–ये उसके आठ अङ्ग हैं। प्रशम, संवेग, अनुकम्पा और आस्तिक्य भाव उसके गुण हैं। इस तरह आर्यको उपदेश

देकर प्रीतिङ्कर महाराजने आर्यासे कहा–अम्बे! 'मैं स्त्री हूँ, इसलिए मैं कुछ नहीं कर सकती'–यह सोचकर दु:खी मत होओ। सम्यग्दर्शन तो प्राणीमात्रका धर्म है, उसे हर कोई धारण कर सकता है।

मुनिराजके उपदेशसे आर्य और आर्याने प्रसन्न होकर अपनी आत्माओंको निर्मल सम्यग्दर्शनसे विभूषित किया।

आर्य और आर्याने पूर्वभवमें राजा वज्रजंघ और श्रीमतीके भवमें मुनिराजको आहार दिया था। तब वहाँ नेवला, शार्दूल, बन्दर और सूअर—ये चार जीव मुनिराजके चरणोंमें अनिमेष दृष्टि लगाए हुए बैठे थे। आर्य द्वारा उनके बारेमें पूछने पर उन मुनिराजने उन चारोंके पूर्व भव सुनाए और उपदेश सह बताया कि ''राजन्! जो मुझे आहार दिया था, उसका वैभव देखनेसे इन सबको अपने पूर्वभवोंका स्मरण हो आया था, जिससे ये सब अपने कुकर्मों पर पश्चाताप कर रहे थे। इन सबने पात्र-दानकी अनुमोदनासे विशेष पुण्यका सञ्चय किया था; इसलिए ये सब मरकर यहाँ उत्तर भोग-भूमि कुरुक्षेत्रमें जन्मे हैं। हे राजन्! ये सब आठ भवों तक तुम्हारे साथ स्वर्ग एवं मनुष्योंके सुख भोगकर संसार-बन्धनसे मुक्त हो जावेंगे। हाँ, और इस श्रीमतीका जीव आपके तीर्थमें दान-तीर्थ चलानेवाला श्रेयांसकुमार होगा तथा उसी पर्यायसे मोक्षश्री प्राप्त करेगा। कार्य हो चुकनेके बाद मुनिराज आकाश-मार्गसे विहार कर गये।

जम्बूस्वामीका पूर्वभव

# राजकुँवर शिवकुमार

जम्बूकुमारके वंशमें धर्मप्रिय नामका एक सेठ था। उसकी गुणदेवी नामकी स्त्रीसे एक अर्हदास नामका पुत्र हुआ था। धन और यौवनके अभिमानसे वह पिताकी शिक्षाको कुछ नहीं गिनता हुआ कर्मोदयसे सातों व्यसनोंमें स्वच्छन्दी हो गया था। इन खोटी चेष्टाओंके कारण जब उसकी दुर्गति होने लगी तब उसे पश्चात्ताप हुआ और 'मैंने पिताकी शिक्षा नहीं सुनी' यह विचार करते हुए उसकी पापकी दुर्भावना कुछ शान्त हो गयी। तदनन्तर कुछ पुण्यका संचय कर वह महेन्द्रस्वर्गमें सामानिक देव हुआ।

यह सामानिक देव वहाँसे आयुष्य पूर्ण करके भवदेव नामसे मनुष्यपर्याय प्राप्त करता है तथा वही भवमें उसे भावदत्त नामका भाई भी होता है वे दोनों भाई उसी भवमें भगवती जिनदीक्षा ग्रहण कर लेते हैं। वह भावदत्त मुनिराजका आत्मा सागरदत्त हुआ एवं भवदेवका आत्मा शिवकुमार हुआ। अब उन दोनोंकी कथा कही जाती है।

इसी जम्बूद्वीपके पूर्व विदेहक्षेत्रमें पुष्कलावती देशके अन्तर्गत एक वीतशोक नामका नगर है। वहाँ महापद्म नामका राजा राज्य करता था। उसकी रानीका नाम वनमाला था। उन दोनोंके महेन्द्रस्वर्गसे चयकर वह शिवकुमार नामका पुत्र हुआ था। नवयौवनसे सम्पन्न होने पर किसी दिन वह अपने साथियोंके साथ क्रीड़ा करनेके लिए वनमें गया था। वहाँ क्रीड़ा कर जब वह वापस आ रहा था तब उसने सब ओर बड़े

ग्राम्यजन सागरदत्त मुनिराजके दर्शन-पूजन हेतु जाते हुए।

उत्साहके साथ सुगन्धित पुष्प आदि मंगलमय पूजाकी सामग्री लेकर आते हुए बहुतसे आदमी देखे। उन्हें देखकर उसने बड़े आश्चर्यके साथ बुद्धिसागर नामक मंत्रीके पुत्रसे पूछा कि 'यह क्या है?' इसके उत्तरमें बुद्धिसागर मंत्रीका पुत्र कहने लगा कि 'हे कुमार! 'दीप्त' नामक

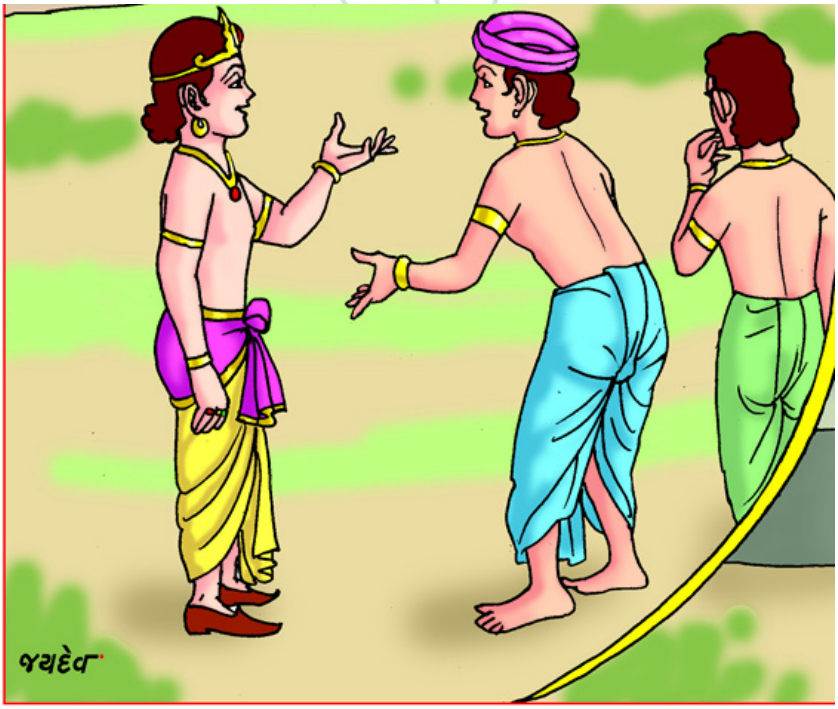


शिवकुमार ग्राम्यजनोंको मंगलमय पूजन-सामग्री लेकर जाते देख बुद्धिसागर मंत्रीपुत्रसे इस बारेमें पूछते हैं।

तपश्चरणसे प्रसिद्ध सागरदत्त नामक एक श्रुतकेवली मुनिराज हैं। उन्होंने एक मासका उपवास किया था। उसके बाद पारणाके लिए आज उन्होंने नगरमें प्रवेश किया था। वहाँ सामसमृद्ध नामक सेठने उन्हें विधिपूर्वक भक्तिसे आहारदान देकर पञ्चाश्चर्य प्राप्त किये हैं।

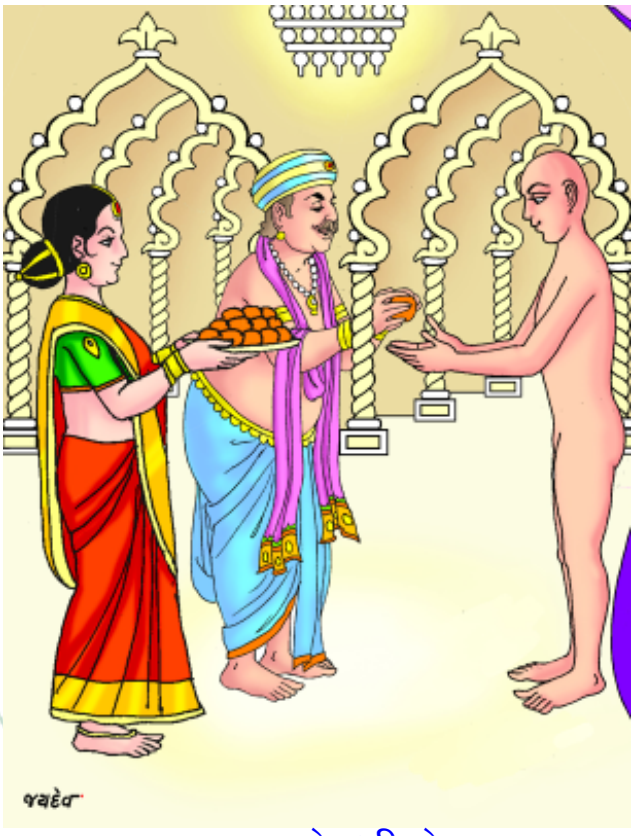

सामसमृद्ध नामक सेठ भक्तिसे सागरदत्त मुनिराजको आहारदान देते हुए।

वे ही मुनिराज इस समय मनोहर उद्यानमें ठहरे हुए हैं, कौतुकसे भरे हुए नगरवासी लोग बड़ी भक्तिसे उन्हींकी पूजा-वन्दना करनेके लिए जा रहे हैं। इस प्रकार मन्त्रीके पुत्रने कहा। यह सुनकर राजकुमारने फिर पूछा कि इन मुनिराज सागरदत्तने अनेक ऋद्धियाँ तपश्चरण और शास्त्रज्ञान किस कारण प्राप्त किया है?

इसके उत्तरमें मन्त्री-पुत्रने भी जैसा सुन रखा था वैसा कहना शुरू किया। पुष्कलावती देशमें पुण्डरीकिणी नामकी नगरी है। उसके स्वामी वज्रदन्त थे वे वज्रदन्त चक्रवर्ती थे। इसलिए उसने चक्ररत्नसे समस्त पृथ्वी अपने आधीन कर ली थी। जब उसकी रानी यशोधरा गर्भिणी हुई तब उसे दोहला उत्पन्न हुआ और उसी दोहलेके अनुसार वह कमलमुखी, बड़े वैभवके साथ जहाँ सीतानदी समुद्रमें मिलती है उसी महाद्वार पर जलक्रीड़ा करनेके लिए समुद्रमें गयी। वहीं उसने निकटकालमें मोक्ष प्राप्त करनेवाला पुत्र प्राप्त किया। चूँकि उस पुत्रका जन्म समुद्रमें हुआ था इसलिए परिवारके लोगोंने उसका नाम

'सागरदत्त' रख लिया। तदनन्तर यौवन अवस्था प्राप्त होनेपर किसी दिन सागरदत्त महलकी छत पर बैठा हुआ अपने परिवारके लोगोंके साथ नाटक देख रहा था, उसी समय अनुकुल नामक एक सेवकने कहा कि हे कुमार! यह आश्चर्य देखो, यह बादल मन्दारगिरिके आकारसे कैसा सुन्दर बना हुआ है? यह सुनकर प्रीतिसे भरा राजकुमार ज्योंही ऊपरकी ओर मुँह कर उस नयनाभिरम्य दृश्यको देखनेके लिए उद्यत हुआ त्योंही वह बादल नष्ट हो गया। उसे नष्ट हुआ देखकर कुमार विचार करने लगा कि जिस प्रकार यह बादल नष्ट हो गया है उसी प्रकार यह यौवन, धन-सम्पदा, शरीर, आयु और अन्य सभी कुछ नष्ट हो जानेवाला है, ऐसा विचारकर वह संसारसे विरक्त हो गया। दूसरे दिन ही वह मनोहर नामके उद्यानमें स्थित अमृतसागर नामक तीर्थंकरके समीप पहुँचा, वहाँ उसने धर्मका स्वरूप सना। समस्त पदार्थोंकी स्थितिका निर्णय किया और भाई-बन्धुओंसे बिदा लेकर अनेक लोगोंके साथ संयम धारण कर लिया। तदनन्तर मनःपर्यय आदि अनेक ऋद्धियोंरूप सम्पदा पाकर धर्मोपदेश देते हुए सब देशोंमें विहार कर वे ही सागरदत्त मुनिराज यहाँ पधारे हैं।

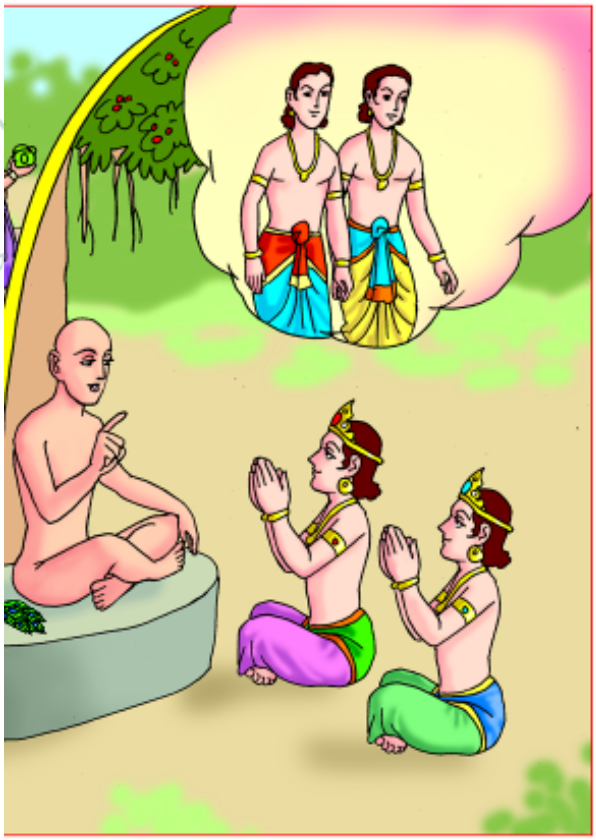

शिवकुमारको पूर्वभव बताते हुए सागरदत्त मुनिराज

इस प्रकार मन्त्रि-पुत्रके वचन सुनकर वह राजकुमार—शिवकुमार बहुत ही प्रसन्न हुआ, उसने शीघ्र ही स्वयं मुनिराजके पास जाकर स्तुति की, धर्मरूपी अमृतका पान किया और

तदन्तर बड़ी विनयसे पूछा कि हे स्वामिन्! आपको देखकर मुझे बड़ा भारी स्नेह उत्पन्न हुआ है इसका क्या कारण है?

इसके उत्तरमें मुनिराजने कहा कि तुम और में पूर्वभवके भाई होनेसे तुम्हें मेरे प्रति बड़ा भारी स्नेह उत्पन्न हुआ है। इस भांति बड़ेभाई मैं भावदत्तका जीव हुआ हूँ और छोटेभाई भवदेवका जीव तू हुआ है। इस प्रकार मुनिराजके वचन सुनकर शिवकुमार विरक्त हुए। वह दीक्षा लेनेके लिए तैयार हुए परन्तु माता-पिताने उन्हें रोक दिया। जिन्हें आत्मज्ञान प्रकट हुआ है ऐसे कुमार यद्यपि नगरमें गये तो भी उन्होंने निश्चय कर लिया कि मैं अप्रासुक आहार नहीं ग्रहण करूँगा। यह बात सुनकर महापद्म राजाने सभामें घोषणा कर दी कि जो कोई कुमारको भोजन करा देगा उसे इच्छानुसार धन दूँगा। राजा महापद्मकी यह घोषणा जानकर सात धर्मक्षेत्रोंके आश्रयदाता दृढवर्मा नामक श्रावकने इस घोषणाका स्वीकार किया। अतः राजाकी आज्ञा अनुसार वह कुमारसे कहने लगा कि हे कुमार! अपने और दूसरेके आत्माको नष्ट करनेमें पण्डित तथा पापके कारण ये कुटुम्बी लोग तेरे शत्रु हैं। इसलिए हे भद्र! तेरे भाव-संयमका नाश न हो

युवतीजन वेष्टित राजकुंवर शिवकुमार वैराग्यसे घरमें ही कठिन तप धारण करते हुए जीवन व्यतीत करते हुए।

इसलिए प्रासुक भोजनके द्वारा मैं तेरी सेवा करूँगा। जो परिवारके लोगोंसे विमुक्त नहीं हुआ है अर्थात् उनके अनुरागमें फँसा हुआ है उसकी संयममें प्रवृत्ति होना दुर्लभ है। इस प्रकार हितकारी वचन सुनकर कुमारने भी उसकी बात मानकर निर्विकारी आचाम्ल रसका आहार किया। वे यद्यपि सुन्दर स्त्रीयोंके समीप रहते थे तो भी उनका चित्त कभी विकृत नहीं होता था। वह भोगोंको तृणके समान तुच्छ मानते थे। इस तरह बारह वर्ष तक तीक्ष्ण तलवारकी धारापर चलते हुए महान कठिन तप धारण कर शिवकुमारने आयुके अन्त समयमें संन्यास धारण किया जिसके प्रभावसे ब्रह्मस्वर्गमें वे अपने शरीरकी कान्तिसे दिशाओंको व्याप्त करते हुए विद्युन्माली देव हुए। वहाँसे आयुष्य पूर्ण करके वह शिवकुमारका जीव इस जम्बूद्वीपके भरतक्षेत्रमें भगवान महावीरके शासनमें जम्बूस्वामी होंगे।

पूर्व शिवकुमारके भवमें जो उनकी पत्नियाँ थी वे ही शेठकी पुत्रीयाँ होकर इस भवमें जम्बूस्वामीकी चार पत्नियाँ होगी। वे भी संयम धरकर अंतिम स्वर्गमें देव होंगी और वहाँसे मनुष्य होकर मोक्षदशाको प्राप्त करेंगी।

भगवान महावीरके शासनमें जम्बूस्वामी अंतिमकेवली होकर मथुराक्षेत्रसे मोक्षदशाको प्राप्त हुए हैं। उन अंतिम केवली भगवान जंबूस्वामीको कोटि कोटि वंदन !

भगवान कुन्दकुन्दाचार्यदेवने अपने भावप्राभृत ग्रंथमें शिवकुमारकी महिमा इसप्रकारसे गायी है :

बहुयुवतिजनवेष्टित छतां पण धीर शुद्धमति अहा !
ए भावसाधु शिवकुमार परीतसंसारी थया ॥

# देवकीके भव्य पुत्र

किसीदिन कुमार वसुदेव(श्रीकृष्णके पिता), धनुर्विद्यामें प्रवीण अपने कंस आदि शिष्योंके साथ राजा जरासंघको देखनेकी इच्छासे राजगृह नगर गये। उस समय वह राजगृह नगर बाहरसे आये अनेक राजाओंके समूहसे शोभित था। उसी समय वहाँ सावधान होकर श्रवण करनेवाले लोगोंके लिए राजा अर्धचक्री जरासन्ध(प्रतिनारायण)की ओरसे निम्नांकित घोषणा दी गयी थी जिसे वसुदेवने भी सुना। घोषणामें कहा गया कि ''सिंहपुरका स्वामी राजा सिंहरथ बड़ा उद्दण्ड है, वह वास्तविक सिंह पर सवारी करता है और उत्कट पराक्रमका धारक है। जो मनुष्य उसे जीवित पकड़कर हमारे सामने दिखायेगा वही पुरुष संसारमें शूर और अतिशय शूरवीर समझा जायेगा। शत्रुके यशरूपी सागरको पीनेवाले उस पुरुषको सम्मानरूपी धन तो समर्पित किया ही जावेगा उसके साथ यह अन्य जनको दुर्लभ आनुषंगिक फल भी प्राप्त होगा। गुणोंके कारण जिसका यश दिशाओंके अन्तमें विश्राम कर रहा है तथा जो अद्वितीय सुन्दरी है ऐसी अपनी जीवद्यशा नामकी पुत्री भी मैं उसे इच्छित देशके साथ दूँगा।''

उस हृदयहारी घोषणाको सुनकर वीर-रसमें पगे हुए धीर-वीर वासुदेवने कंससे पताका ग्रहण करवायी। तदनन्तर वसुदेव कंसको साथ ले विद्यानिर्मित सिंहोंके रथ पर सवार हो सिंहपुर गये। जब सिंहरथ सिहोंके रथ पर बैठकर युद्धके लिए वसुदेवके सामने आया तब उन्होंने बाणोंके द्वारा उसके सिंहोंकी रस्सी काट डाली जिससे उसके सिंह भाग गये। उसी समय कंसने उछलकर गुरुकी आज्ञासे शत्रुको बाँध लिया। कंसकी चतुराई देख वसुदेवने कहा कि वर माँग। कंसने उत्तर दिया हे आर्य! अभी वर आपके ही घर रहने दीजिए। वसुदेवने शत्रुको ले

जाकर जरासन्धको दिखा दिया। शत्रुको सामने देख जरासन्ध सन्तुष्ट हुआ और वसुदेवसे बोला कि तुम पुत्री जीवद्यशासे विवाह करो।

इसके उत्तरमें वसुदेवने कह दिया कि शत्रुको कंसने पकड़ा है मैंने नहीं। राजा जरासन्धने कंससे उसकी जाति पूछी तब उसने कहा कि राजन्! मेरी माता मंजोदरी कोशाम्बीमें रहती है और मदिरा बनानेका काम करती है। तदनन्तर कंसके वचन सुनकर राजा इसप्रकार विचार करने लगा कि इसकी आकृति कहती है कि यह मदिरा बनानेवालीका पुत्र नहीं है। तत्पश्चात् राजा जरासन्धने आदमी भेजकर कोशाम्बीसे मंजोदरीको बुलाया और मंजोदरी मंजूषा तथा उसके नामकी मुद्रा लेकर वहाँ आ पहुँची। राजाके पूछने पर कहा कि हे प्रभो! मैंने इसे यमुनाके प्रवाहमें मंजूषासे इसे पाया था। हे राजन्! शिशुको देखकर दया आ गई अतः मैंने इसका पालन-पोषण किया। यह बालक स्वभावसे ही उग्रमुख है–कठोर शब्द बकनेवाला है। यद्यपि पुण्यवान है तो भी अभागा जान पड़ता है। बच्चोंके साथ खेलता था तो उनके शिरमें थप्पड़ लगाये बिना नहीं खेलता था। इसकी इस दुष्प्रवृत्तिसे मेरे पास लोगोंके उलाहने आने लगे। जिनसे डरकर मैंने इसे निकाल दिया।

यह शस्त्रविद्या सीखना चाहता था इसलिए किसीका शिष्य बन गया। यह कांसकी मंजूषा ही उसकी माता है मैं नहीं हूँ, अतः इसके गुण-दोषोंसे मेरा कोई सम्बन्ध नहीं है। यह कांसकी मंजूषामेंसे मिला होनेसे इसका नाम मैंने कंस रखा था। इसलिए मंजूषा राजाको दिखा दी। मंजूषा खोली गयी तो उसमें उसके नामकी मुद्रिका दिखी। राजा जरासन्ध उसे लेकर बाँचने लगा। उसमें लिखा था कि यह राजा उग्रसेन और रानी पद्मावतीका पुत्र है। जब यह गर्भमें स्थित था तभीसे अत्यन्त उग्र था। इसकी उग्रतासे भयभीत होकर ही उसे यमुना नदीमें छोड़ा गया है, यह जीवित रहे तो इसके कर्म ही इसकी रक्षा करे। मुद्रिकाको

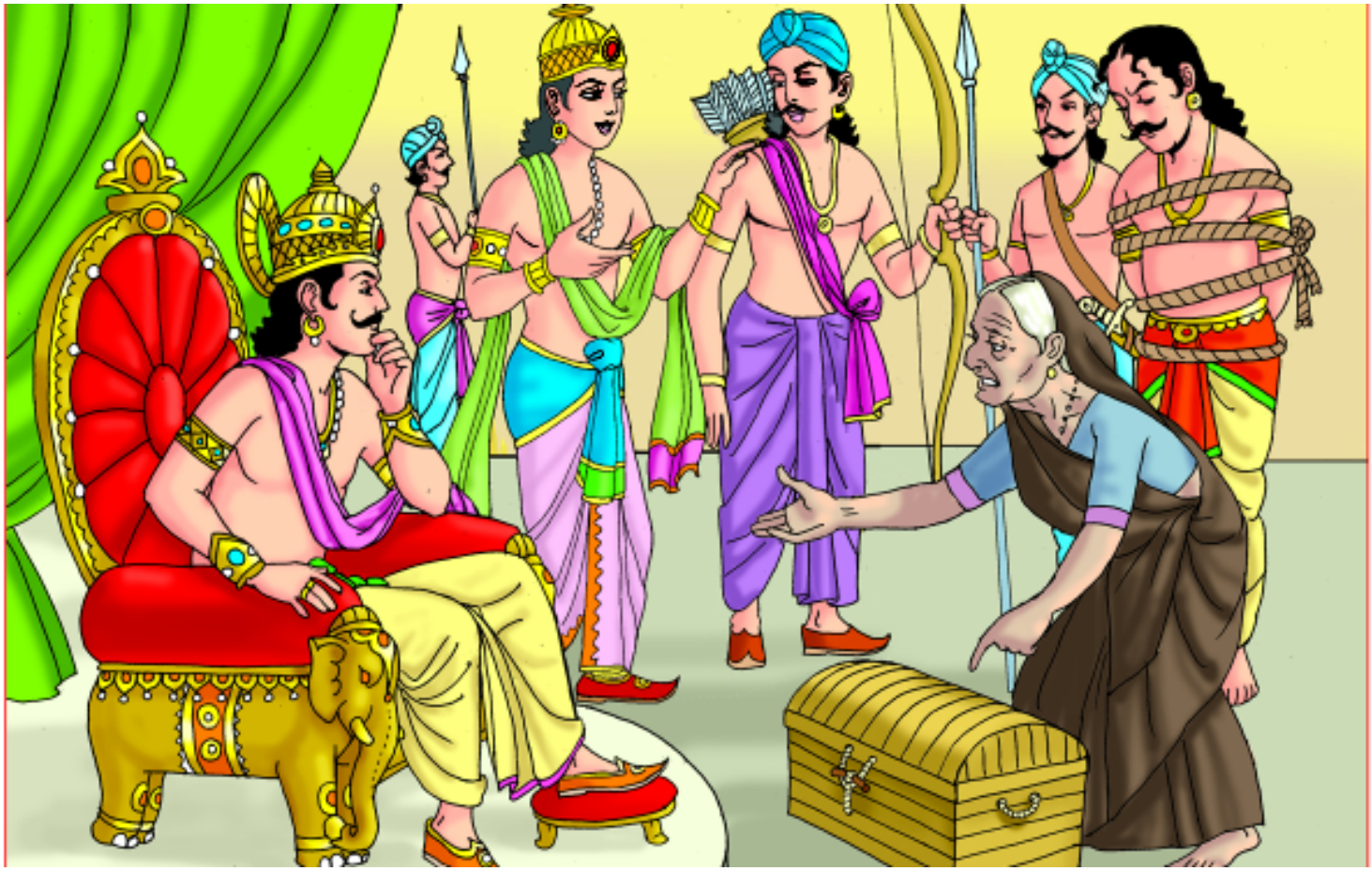

महाराजा जरासंघकी घोषणानुसार राजा सिंहरथको बाँधकर वसुदेव व कंस उसे जिन्दा लाते है।
कंसके कुलको जाननेके लिए मंजोदरी जरासंघको मंजूषा दिखाती हुई....।

बाँचकर राजा जरासन्ध समझ गया कि यह हमारा भानजा है। अतः उसने हर्षित होकर उसे गुणरूपी सम्पदासे अपनी जीवद्यशा पुत्री दे दी।

मेरे पिता(उग्रसेन)ने तो मुझे उत्पन्न होते ही नदीमें छोड़ दिया था। यह जानकर कंसको महाराजा उग्रसेन पर बड़ा क्रोध आया इसलिए उसने जरासन्धसे मथुराका राज्य मांगा और जरासन्धने उसे दे भी दिया। उसे पाकर सब प्रकारकी सेनासे युक्त कंस जीवद्यशाके साथ मथुरा आया। वह निर्दय तो था ही इसलिए वहाँ जाकर उसने पिता उग्रसेनके साथ युद्ध ठान दिया तथा युद्धमें उन्हें जीतकर शीघ्र ही बाँध लिया। तत्पश्चात् जो प्रकृतिका अत्यन्त उग्र था और जिसकी आशाएँ अत्यन्त क्षुद्र थी ऐसे उस कंसने अपने पिता राजा उग्रसेनको इधर-उधर जाना बन्द कर उन्हें नगरके मुख्य द्वारके ऊपर कैद कर दिया।

धनुर्विद्यामें प्रवीणता प्राप्त की होनेसे कंस वसुदेवके उपकारका प्रत्युपकार तो करना चाहता था पर वह निर्णय नहीं कर पाता था कि मैं इनका क्या प्रत्युपकार करूँ। वह सदा अपने-आपको वसुदेवका किंकर समझता था। एक दिन वह प्रार्थनापूर्वक बड़ी भक्तिसे गुरु वसुदेवको मथुरा ले आया और वहाँ लाकर उसने प्रत्युपकारस्वरूप अपनी देवकी नामक बहन प्रदान कर दी। तदनन्तर वसुदेव, कंसके आग्रहसे,

महाराजा कंस गुरु वसुदेवसे उपकारके प्रत्युपकार हेतु अपनी बहन देवकीको प्रदान करता है।

सुन्दर कान्तिकी धारक एवं मधुर वचन बोलनेवाली देवकीके साथ क्रीड़ा करते हुए मथुरामें ही रहने लगे। शत्रुओंको सन्तप्त करनेवाला एवं जरासन्धको अतिशय प्रिय कंस, शूरसेन नामक विशाल देशकी राजधानी मथुराका शासन करने लगा।

एक दिन कंसके बड़े भाई चारणऋद्धिधारी अतिमुक्तक मुनि आहारके समय राजमन्दिर आये सो कंसकी स्त्री जीवद्यशा नमस्कार कर विभ्रम दिखाती हुई उनके सामने खड़ी हो गयी और हँसती हुई क्रीड़ाभावसे कहने लगी कि यह आपकी बहन देवकीका आनन्द वस्त्र है इसे देखिये। संसारकी स्थितिको जाननेवाले मुनिराज, उस निर्मर्याद चित्तकी धारक एवं राज्यवैभवसे मत्त को रोकनेके लिए अपनी वचनगुप्ति तोड़कर बोले कि अहो! तू हँसी कर रही है परन्तु यह तेरी मूर्खता है, तू दुःखदायक शोकके स्थानमें आनन्द प्राप्त कर रही है। तू निश्चित समझ, कि इस देवकीके गर्भसे जो पुत्र होगा वह तेरे पति और पिताको मारनेवाला होगा। यह ऐसी ही होनहार है—इसे कोई नहीं टाल सकता।

यह सुनते ही जीवद्यशा भयभीत हो उठी, उसके नेत्रोंसे आँसू निकलने लगे। वह उसी समय मुनिराजको छोड़ पतिके पास गयी और 'मुनिके वचन सत्य ही निकलते हैं' यह विश्वासपूर्वक उसने सब समाचार कह सुनाया। स्त्रीके मुखसे यह समाचार सुनकर कंसको भी शंका हो गयी।

वह तीक्ष्णबुद्धिका धारक तो था ही इसलिए शीघ्र ही उपाय सोचकर सत्यवादी वसुदेवके पास गया और चरणोंमें नम्रीभूत होकर वर माँगने लगा। उसने कहा कि हे स्वामिन्! मेरा जो वर आपके पास धरोहर है उसे दे दीजिये और वह वर यही चाहता हूँ कि 'प्रसूतिके समय देवकीका निवास मेरे ही घरमें रहा करे'। वसुदेवको मुनिराजके इस वृत्तान्तका कुछ भी ज्ञान नहीं था इसलिए उन्होंने निर्बुद्धि होकर

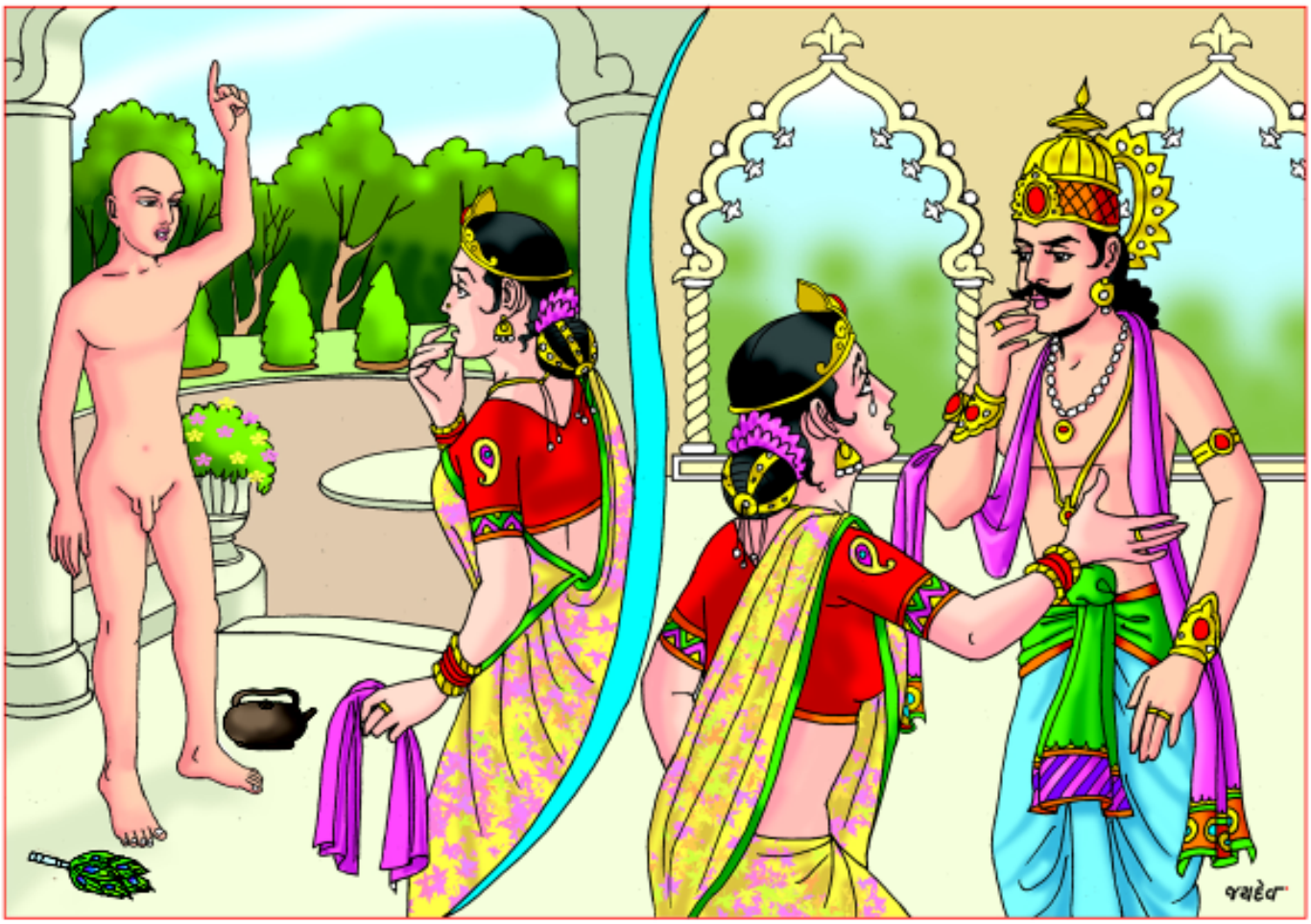

(१) महाराजा कंसके यहाँ अतिमुक्तक मुनि आहार हेतु पधारते हैं वहाँ रानी जीवद्यशा मदसह मुनिका अविनय करनेसे मुनि उसे उसकी भविष्यवाणी बताते हुए ।

(२) जीवद्यशा यह सारा प्रसंग व भविष्यवाणी पति कंससे बताते हुए....।

कंसके लिए वह वर दे दिया। भाईके घर बहनको क्या आपत्ति आ सकती है यह शंका भी तो नहीं की जा सकती? पीछे जब उन्हें यह वृत्तान्तका पता चला तो उनका हृदय पश्चात्तापसे बहुत दुःखी हुआ। वे इसी समय आम्रवनके मध्यमें स्थित चारण ऋद्धिधारी अतिमुक्तक नामक मुनिराजके पास गये और देवकीके साथ प्रणाम कर उनके समीप बैठ गये। मुनिराजने दोनोंको आशीर्वाद दिया। तदनन्तर वसुदेवने उनसे अपने हृदयमें स्थित निम्नांकित प्रश्न पूछा।

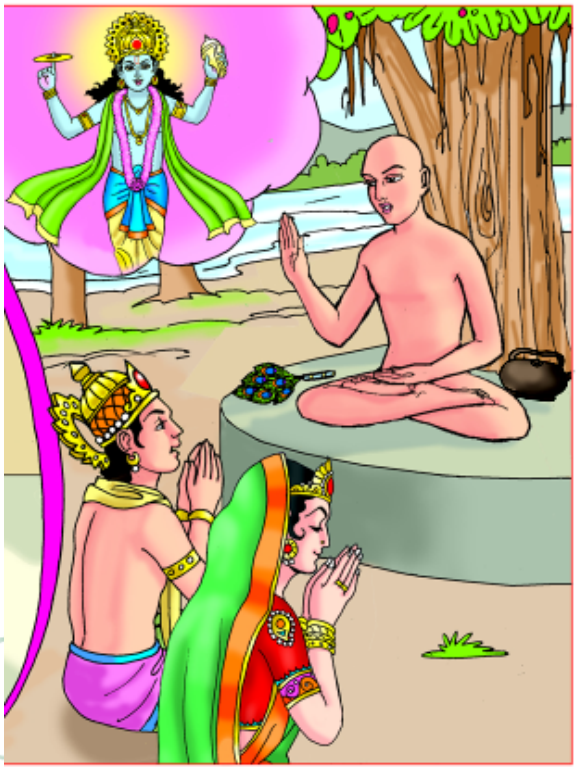

वसुदेव व देवकी अतिमुक्तक मुनिराजके दर्शन कर अपने प्रश्नका उत्तर सुनते हुए।

हे भगवन्! कंसने अन्य जन्ममें ऐसा कौनसा कर्म किया था जिससे वह दुर्बुद्धि अपने ही पिताका शत्रु बना। इसी प्रकार हे नाथ! क्या मेरा पुत्र इस पापी कंसका विघात करनेवाला होगा?—यह मैं जानना चाहता हूँ? सो कृपा कर कहिये। अतिमुक्तक मुनिराज दिव्यनेत्रके धारक और अवधिज्ञानी थे इसलिए वसुदेवके पूछने पर मुनिराज कहने लगे।

## कंसके पूर्वजन्मका वृत्तान्त

इसी मथुरा नगरीमें एक वशिष्ठ नामक तापस रहता था। वह अज्ञानी यमुना नदीके किनारे तप करता था, एक पाँवसे खड़ा रहता

था, ऊपरकी ओर दोनों भुजाएँ उठाए रहता था और बड़ी बड़ी जटाए धारण करता था। किसी दिन वहाँ 500 शिष्योंके साथ वीरभद्र मुनि आये। उनके संघके नवदीक्षित मुनिने वशिष्ठकी तपस्या देख 'अहा! यह घोर तपस्वी वशिष्ठ है' इस प्रकार प्रशंसा की। आचार्यने तापसीको अज्ञानी बताते हुए नवदीक्षितको प्रशंसा करनेसे रोका। वशिष्ठने पूछा कि ''मैं अज्ञानी कैसे हूँ?' आचार्यने उत्तरमें कहा कि तुम छह कायके जीवोंको पीड़ा पहुँचाते हो इसलिए अज्ञानी हो। पंचाग्नि तपमें अग्निका संसर्ग अवश्य रहता है और अग्निके द्वारा पंचेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय तथा एकेन्द्रिय जीव अवश्य जलते हैं। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पति इन पाँच स्थावरों तथा अन्य त्रस प्राणियोंका विघात होनेसे अज्ञानी जीवके प्राणिसंयम कैसे हो सकता है? इसी प्रकार तू विरक्त होकर भी मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान और मिथ्याचारित्रको माननेवाला है, तुझे सम्यग्ज्ञानपूर्वक होनेवाला इन्द्रिय संयम भी कैसे हो सकता है। जो कायक्लेश तपको प्राप्त है, मानसे भरा हुआ है और समीचीन संयमसे रहित है उसकी तपस्या मुक्तिके लिए कैसे हो सकती है? एक जैन मार्ग ही सन्मार्ग है, उसीमें संयम, तप, दर्शन, चारित्र और समस्त पदार्थोंको प्रकाशित करनेवाला ज्ञान प्राप्त हो सकता है। आचार्यके मुखसे वशिष्ठ तापसको जान पड़ा कि 'मैं अज्ञानी हूँ और जैनधर्म सम्यग्ज्ञानसे परिपूर्ण है'। अतः वीरभद्र गुरुके पास जिनदीक्षा धारण कर ली। उनके साथ अनेक मुनि तपस्या कर रहे थे परन्तु लाभान्तराय कर्मके उदयसे उन सबमें एक वशिष्ठ मुनि ही आहारके लाभसे वर्जित रह जाते थे अर्थात् उन्हें आहारकी प्राप्ति बहुत कम होती थी। परिषह सहन करनेका जिन्हें अच्छा अभ्यास हो गया था ऐसे वशिष्ठ मुनि पृथ्वी पर प्रसिद्ध एकविहारी हो गये—अकेले ही विचरण करने लगे।

महातपस्वी वशिष्ठ मुनि कदाचित् विहार करते हुए मथुरा आये सो राजा तथा प्रजाने बड़ी प्रतिष्ठाके साथ उनकी पूजा की। उनके तपसे वशीभूत हुई सात देवीयाँ उनके आधीन हुई। उस समय वशिष्ठने कहा इस समय उनका कोई काम नहीं है सो देवीयाँ वापस चली गई। एक मासोपवासके पश्चात् वशिष्ठ मुनि तपश्चर्या कर रहे थे। वे पारणाके लिए आए तब राजा उग्रसेनने कहा कि 'मैं ही आहार दूँगा' यह कहकर नगरवासीयोंको आहार देनेसे रोक दिया। पुनः मुनिराज एक मासोपवासपूर्वक आहारके लिए दो बार पधारे परंतु प्रमादवश राजा आहार देना भूल गया। मुनि आहारके लिए मथुरामें घूमे परन्तु कहीं भी आहार नहीं मिला। अन्तमें श्रमसे पीड़ित नगरके द्वार पर विश्राम करने लगे। उन्हें देख नगरजनोंने कहा कि बड़े खेदकी बात है कि राजा मुनिराजको स्वयं आहार देता नहीं और दूसरोंको मना कर रक्खा है। उस समय यह बात सुन मुनिराजको क्रोध आ गया और उसी समय पहले स्मरणमें आई देवीयोंसे कहा कि अगले जन्ममें मेरा काम करें और मुनि वनकी ओर प्रस्थान कर गये। राजा उग्रसेनका अपमान करनेके लिए मुनिने उग्र निदान बांध लिया कि ''मैं उग्रसेनका पुत्र होकर उसका बदला लूँ।'' निदानके कारण वे मरकर राजा उग्रसेनकी रानी पद्मावतीके गर्भमें आये। फिर जन्मसे ही वह बालक अत्यंत रौद्र था इसलिए रानीने भयसे उसे कांसकी मंजूषामें बन्द करके यमुनाके प्रवाहमें छुडवा दिया। इसके आगेके समाचार तुम्हें विदित हैं। आगे चलकर तुम्हारा पुत्र इस पापी कंसको मारेगा और राजा उग्रसेनको छुडवायेगा। अब तेरे पुत्रोंका वृत्तांत कहता हूँ सो मनको स्थिर कर सुन।

देवकीके प्रथम छ पुत्र चरमशरीरी होंगे उनकी मृत्यु नहीं होगी अतः चिन्तारूपी व्याधिका त्याग करो। क्योंकि ये छह जीव युगलियारूपसे देवकीके गर्भमें क्रम क्रमसे उत्पन्न होंगे। वे पराक्रमके महासागर-अत्यन्त पराक्रमी होंगे। इन्द्रका आज्ञाकारी सुनैगम अपरनाम हारी नामक देव उन पुत्रोंको उत्पन्न होते ही 'धाय'के जीव अलकाके पास पहुँचा देगा; वहीं वे यौवनको प्राप्त करेंगे। उन पुत्रोंमें बड़ा पुत्र नृपदत्त, दूसरा देवपाल, तीसरा अनीकदत्त, चौथा अनीकपाल, पाँचवाँ शत्रुघ्न और छठा जितशत्रु नामसे प्रसिद्ध होगा। तुम्हारे ये सभी पुत्र रूपसे अत्यन्त सदृश होंगे अर्थात् समानरूपके धारक होंगे। ये सभी कुमार हरिवंशके चंद्रमा, तीन जगतके गुरु श्री नेमिनाथ भगवानकी शिष्यताको प्राप्त कर मोक्ष जावेंगे। देवकीका सातवाँ पुत्र शंख, चक्र, गदा तथा खड्गको धारण करनेवाला होगा। वह कंस आदि शत्रुओंको मारकर समस्त पृथ्वीका पालन करेगा वह अत्यन्त वीर होगा, तथा इस जंबूद्वीपके भरतक्षेत्रमें नौवाँ नारायण होगा।

मृत्युकी शंकासे शंकित कंस वसुदेव और देवकीकी निरन्तर सेवा सुश्रुषा करने लगा। तत्पश्चात् प्रसुतिकाल आने पर जब देवकीके युगल पुत्र उत्पन्न हुए तब इन्द्रकी आज्ञासे सुनैगम नामका देव उन उत्तम युगल पुत्रोंको सुभद्रिल नगरके सेठ सुदृष्टिकी स्त्री अलका (पूर्वभवकी रेवती धायका जीव)के यहाँ पहुँचा आया। उसी समय अलकाके भी युगलिया पुत्र हुए थे परन्तु भाग्यवश वे उत्पन होते ही मर गये थे। सुनैगम देव उन दोनों मृत पुत्रोंको उठाकर देवकीके प्रसुति गृहमें रख आया। शंकासे युक्त कंसने बहनके प्रसूति गृहमें प्रवेश कर उन दोनों मृतक पुत्रोंको देखा और भीलके समान रौद्र परिणामी हो पैर पकड़कर शिलातल पर पछाड़ दिया। तदनन्तर देवकीने क्रम क्रमसे दो युगल

और उत्पन्न किये सो देवने उन्हें भी पुत्रोंकी इच्छा रखनेवाली अलका शेठानीके पास भेज दिया। इधर पापी कंसने भी उस शेठानीके निष्प्राण पुत्रोंको पहलेके समान ही शिला पर पछाड़ दिया। अपना पुण्य ही उन छहों देवकी पुत्रोंकी रक्षा कर रहा था।

## देवकीके सातों पुत्रोंके पूर्वभव

काफ़ी समय पूर्व राजा शूरसेन मथुरापुरीकी रक्षा करते थे तब वहाँ बारह करोड़ मुद्राओंका अधिपति भानु नामका सेठ रहता था। उसकी स्त्रीका नाम यमुना था। उन दोनोंको सुभानु, भानुकीर्ति, भानुषेण, शूर, सूरदेव, शूरदत्त और शूरसेन ये सात पुत्र उत्पन्न हुए। ये सातों भाई अत्यन्त सुन्दर तथा स्वभावसे ही एक दूसरेके स्नेही थे। उन सातों पुत्रोंकी क्रमसे कालिन्दी, तिलका, कान्ता, श्रीकान्ता, सुन्दरी, द्युति और चन्द्रकान्ता ये सात स्त्रीयाँ थीं जो उच्च कुलोंकी कन्याएँ थीं। भानुसेठने अभयनन्दी गुरुके समीप दीक्षा ली और उसकी स्त्री यमुनाने जिनदत्ता आर्यिकाके समीप दीक्षा ले ली। सातों भाईयोंने जुआ और वेश्या व्यसनमें फँसकर पिताका सारा धन नष्ट कर दिया। उनके पास जब कुछ नहीं रहा तब वे चोरी करनेके लिए उज्जयिनी नगरी गये। उज्जयिनीके बाहर महाकाल नामक एक वन है। वहाँ सम्पतिकी रक्षा के लिए छोटेभाई शूरसेनको रखकर शेष छह भाई निःशंक हो रात्रिके समय नगरीमें प्रविष्ट हुए। चोरी करनेके बादमें उन्होंने चोरीसे प्राप्त हुए धनके बराबर हिस्से कर शूरसेनसे कहा कि अपना हिस्सा उठा लो। शूरसेनने हिस्सा लेनेके प्रति अनिच्छा प्रकट करते हुए कहा कि ''लोग स्त्रियोंके पीछे ही नाना प्रकारके अनर्थ करते हैं और स्त्रीयाँ वज्रमुष्टिके समान होती है।'' यह वृत्तान्त सुनकर सुभानुको छोड़कर बाकीके छोटे छह भाईयोंने विरक्त होकर वरधर्म गुरुके समीप दीक्षा धारण की। बड़ा

भाई धन लेकर स्त्रीओंके समीप गया और सारा वृत्तांत सुनाया तब उन्होंने भी विरक्त हो दीक्षा ले ली। अन्तमें बड़े भाई सुभानुकी बुद्धि ठिकाने आ गयी इसलिए उसने भी वरधर्म गुरुके समीप दीक्षा ली। घोर तपको धारण करनेवाले सातों मुनिराज आयुके अन्तमें समाधिमरण करके सौधर्म स्वर्गमें एक सागरकी आयुवाले त्रायस्त्रिंश जातिके देव हुए।

धातकीखण्ड द्वीपके पूर्व भरतक्षेत्रमें जो विजयार्ध पर्वत है उसकी दक्षिण श्रेणीमें नित्यालोक नामका नगर है। वहाँके राजाके ये सात पुत्र हुए, वहाँ वैराग्य प्राप्त होनेसे सातों मुनिराजने समाधिमरण करके माहेन्द्र स्वर्गमें सात सागरकी आयुके धारक सामानिक जातिके देव हुए और वहाँकी विभूति चिरकाल तक भोगते रहे।

तदनन्तर वहाँसे च्युत होकर बड़ा भाई सुभानुका जीव इसी भरतक्षेत्रके हस्तिनापुर नगरमें सेठकी बन्धुमती स्त्रीसे शंख नामका पुत्र हुआ। शेष छह भाईयोंके जीव इसी नगरके राजा गंगदेवकी नन्दयशा रानीसे तीन युगलक रूपमें छह पुत्र हुए। रानी नन्दयशाके गर्भमें जब सातवाँ पुत्र आया तब उस रानीके अत्यन्त दुर्भाग्यका उदय आया। उससे दुःखी होकर उसने उत्पन्न पुत्रको छोड़ दिया, अतः रेवती नामकी धायने उसे पाल-पोष कर बड़ा किया। उसका नाम निर्नामक था। यह निर्नामक श्रेष्ठीपुत्र शंखको बड़ा प्रिय था। शंखका जीव दीक्षा लेकर तप करके आगेके भवमें हलको धारण करनेवाला बलदेव होगा और निर्नामकका जीव मुनिदीक्षा लेकर निदानबंधके कारण नारायण कृष्ण होगा।

रानी नन्दयशाने रेवती धाय और बन्धुमती सेठानीके साथ सुव्रता नामक आर्यिकाके समीप उत्तम व्रतोंके समूहसे सुशोभित दीक्षा धारण कर ली। रेवती धाय मनुष्यपर्याय प्राप्त कर भद्रिलसा नगरमें सुदृष्टि नामक

देवकी के सात स्वप्नके फल स्वरूप तीन खंडके अधिपति नौवाँ नारायण होनेकी बात बताते हुए वासुदेव ।

सेठकी अलका नामकी स्त्री हुई है। इस प्रकार मुनिराजके मुखसे अपने पुत्रोंके पूर्वभवके वृत्तांत सुनकर वसुदेव व देवकी निश्चिंत हुए।

(यहाँ देवकीके सात पुत्रोंके पूर्वभवकी कथा समाप्त होती है।)

जिनका चरित्र कहा उनमेंसे छ पुत्र जो युगलिक रूपमें राजपुत्र हुए थे वे सभी देवकीके तीन युगलकरूपमें छ पुत्र होते हैं और उनको देव द्वारा अलका शेठानीके यहाँ छोड़ दिए जाते हैं। उनका वहाँ सुखपूर्वक लालन-पालन होता हैं।

छ पुत्र होनेके बाद एक दिन देवकीने रात्रिके अंतिम प्रहरमें सात स्वप्न देखे। देवकीने जाकर अपने पतिसे सब स्वप्न कहे और विद्वान पति– राजा वसुदेवने इस प्रकार उनका फल कहा। ''हे प्रिये! तुम्हारे शीघ्र ही एक ऐसा पुत्र होगा जो तीन खंडका अधिपति नौवाँ नारायण होगा।

यह सातवें पुत्रका जन्म होते ही कंसके भयसे बलभद्र एवं वसुदेव उसे वृंदावन गाँवमें रहनेवाले सुनंद गोप और उसकी पत्नी यशोदाको दे आये। वह सुनंद गोप वंश परम्परासे वसुदेवका विश्वासपात्र था। वसुदेवने नन्दगोपको कहा कि तू इसे अपना पुत्र मानकर ही लालन-पालन करना। तथा यह रहस्य किसीको भी मालूम न हो इस बातका ख्याल रखना। तदन्तर उसी समय उत्पन्न हुई यशोदाकी पुत्रीको लेकर दोनों शीघ्र ही वापस आ गये और शत्रुको विश्वास दिलानेके लिए उसे रानी देवकीके लिए देकर गुप्तरूपसे स्थित हो गये।

तदन्तर बहनकी प्रसूतिका समाचार पाकर निर्दय कंस प्रसूति-गृहमें घुस गया। वहाँ निर्दोष कन्याको देखकर यद्यपि उसका क्रोध दूर हो गया था तथापि दीर्घदर्शी होनेके कारण उसने विचार किया कि कदाचित् इसका पति मेरा शत्रु हो सकता है। इस शंकासे आकुलित

होकर उसने उस कन्याको स्वयं उठा लिया और हाथसे मसलकर नाक चपटी कर दी।

इस प्रकार देवकीके मनको संताप करनेवाले कंसने जब देखा कि इसके पुत्र होना अब बन्द हो गया है तब वह सन्तुष्ट हो हृदयकी क्रूरताको छिपाता हुआ कुछ दिनों तक सुखसे निवास करता रहा। तदनन्तर जिसका जातसंस्कार कर कृष्ण नाम रखा गया था ऐसा व्रजवासी बालक नन्द और यशोदाकी अभूतपूर्व प्रीतिको बढ़ाता हुआ सुखसे बढ़ने लगा। जब वह बालक चित्त पड़ा हुआ गदा, खड्ग, चक्र, अंकुश, पद्म आदि चिह्नोंकी प्रशस्त रेखाओंसे चिह्नित लाल-लाल हाथ-पैर चलाता था तब गोप और गोपियोंके मनको बरबस खींच लेता था। शुभ बाल्यकालके प्रारम्भमें ही सुनन्द गोप और यशोदाके घर वह दर्शनीय–मनोहर बालक वनके मध्यमें बढ़ने लगा।

इस प्रकार अतिमुक्तक मुनिराजने कहा उस अनुसार यह निर्नामकका जीव अनेक प्रकारके पराक्रमोंसे प्रसिद्ध होता हुआ, भाई बलदेव व पिता वासुदेव तथा माता देवकीको आनन्दित करता हुआ नौवें प्रतिनारायण जरासंघ व कंसको युद्धमें मारकर अर्द्धचक्री नारायण बनता है व राजा उग्रसेनको बंधनसे छुडाता है।

इसी भांति देवकीके सातों पुण्यशाली पुत्रोंका अपने-अपने पुण्यसे अपना-अपना लालन-पालन हो रहा था। देवकी मात्र अंतिम पुत्रको पहचान पाई थी पर वह बाकीके पुत्रोंके सम्बन्धमें अनजान थी।

अतः जब छ मुनिराज दो–दो करके देवकीके यहाँ आहार लेने पधारे तो देवकीको शंका होनेसे उसने भगवान नेमिनाथके समवसरणमें जाकर (विनयको धारण करनेवाली देवकीने) हाथ जोड़कर भगवान्को नमस्कार किया और उसके बाद यह पूछा कि भगवन्! आज सुवर्णके

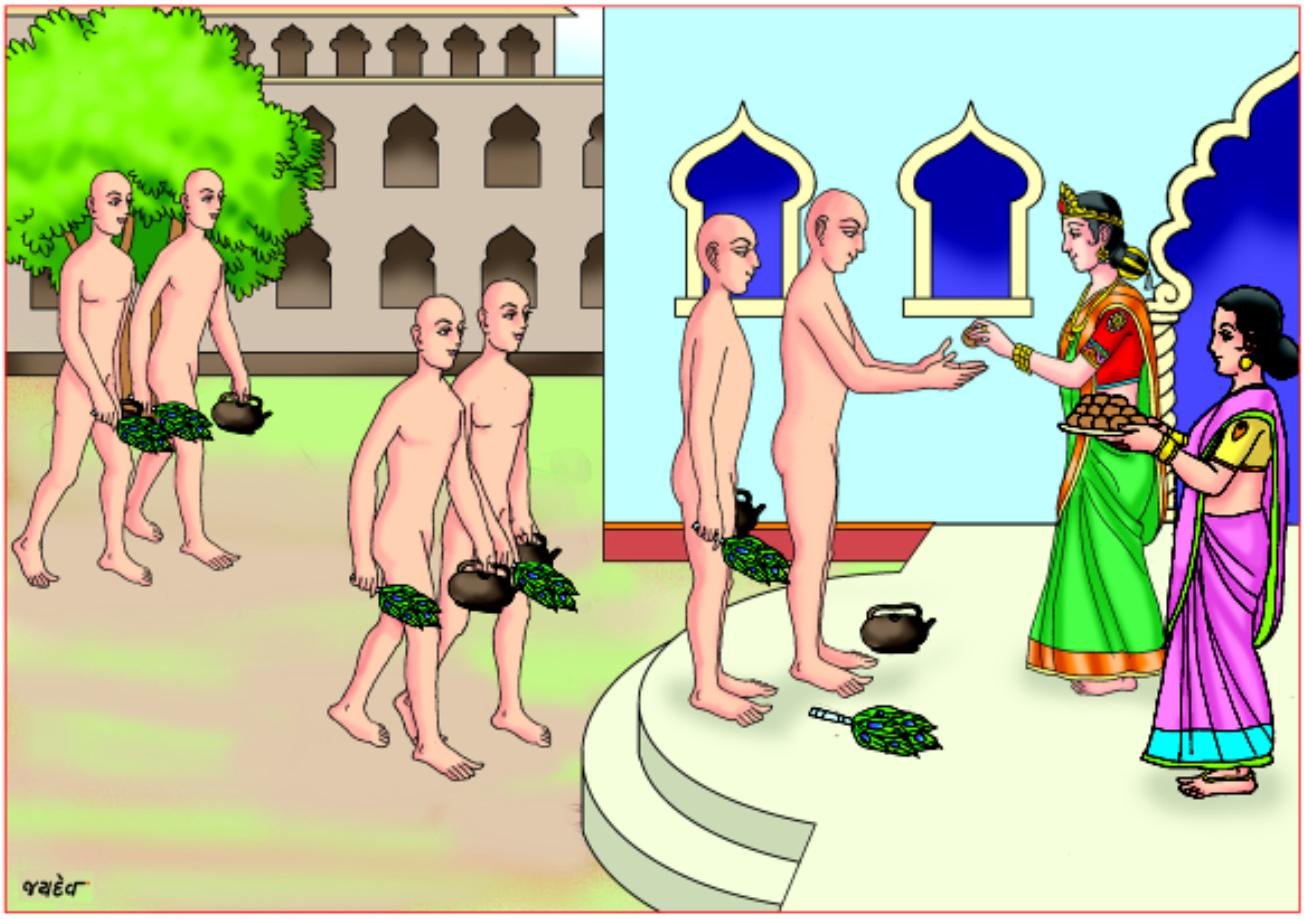

देवकी के निवासस्थान पर एक-एक युगल मुनिराज आहार हेतु पधारते हैं।

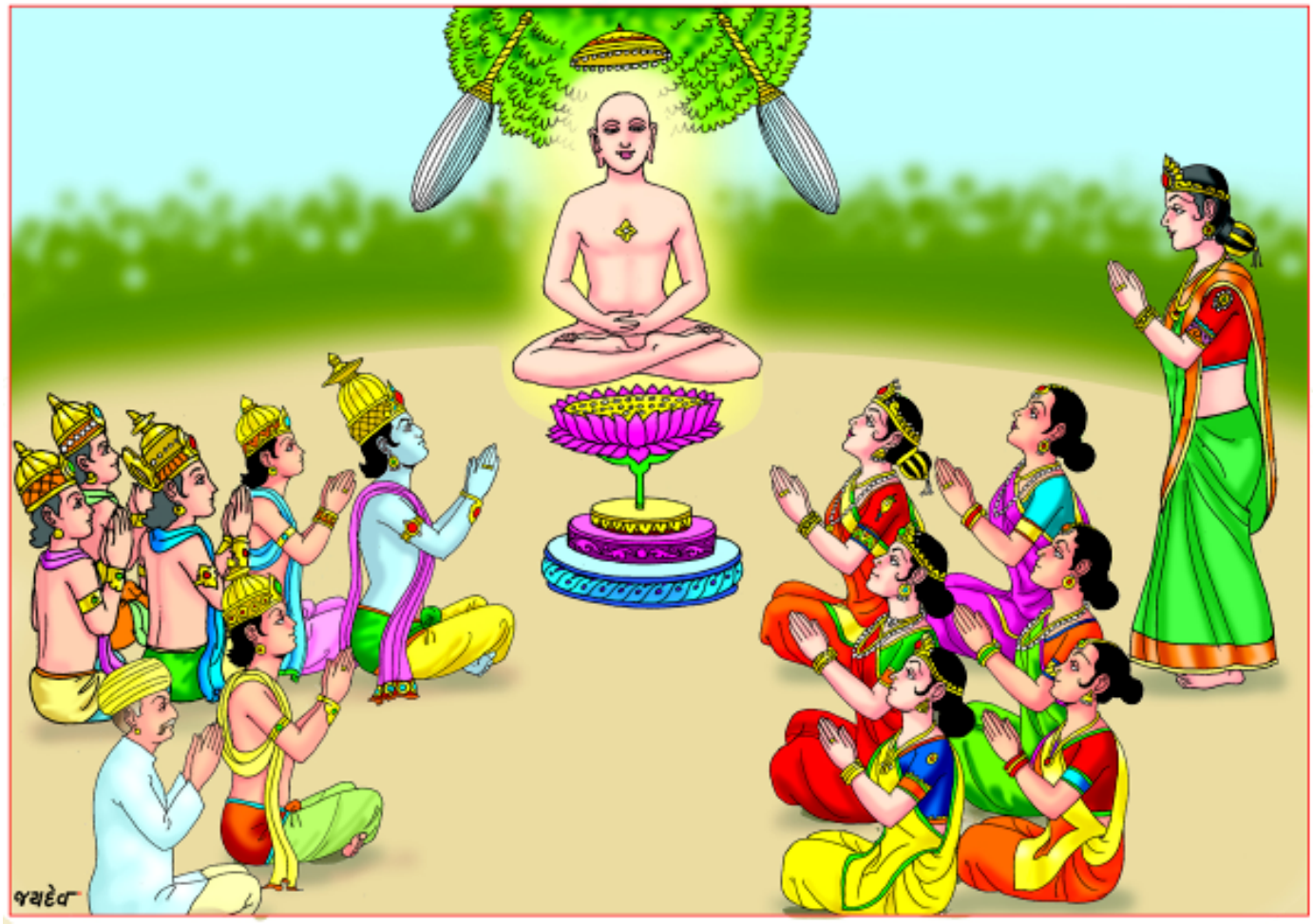


भगवान नेमिनाथके समवसरणमें देवकीका छ मुनिराजके बारेमें प्रश्न व भगवानकी दिव्यध्वनिसे समाधान।

समान सुन्दर दो मुनियोंके युगल मेरे भवनमें तीन बार आये और उन्होंने तीन बार आहार लिया। हे प्रभो! जब मुनियोंके भोजनकी बेला एक है और एक ही बार वे भोजन करते हैं तब मुनि एक ही घरमें अनेक बार क्यों प्रवेश करते हैं? अथवा यह भी हो सकता है कि वह तीन मुनियोंका युगल हो और अत्यन्त सदृशरूप होनेके कारण मैं भ्रान्तिवश उन्हें पहिचान नहीं सकी हूँ। परन्तु इतना अवश्य है कि उन सबमें मुझे पुत्रोंके समान स्नेह क्यों उत्पन्न हुआ था?

देवकीके इस प्रकार कहने पर भगवान्ने कहा कि ये छहों मुनि तेरे ही पुत्र हैं और कृष्णके पहले तीन युगलके रूपमें तूने उत्पन्न किया था। देवने कंससे इसकी रक्षा की और भद्दिलपुरमें सुदृष्टि सेठ तथा अलका शेठानीके यहाँ पुत्ररूपसे इनका लालनपालन हुआ। धर्म श्रवण कर ये सबके सबने एक साथ भगवती मुनिदीक्षा ले ली और मुनि हो गये और कर्मोंका क्षय कर इसी जन्ममें सिद्धिको प्राप्त होंगे। ये सब नई दीक्षा लेकर भिक्षाके लिए नगरमें आये थे और तेरे यहाँ एकसमान रूपवाले तीनबार दो-दो करके मुनिराज आहार हेतु आये देखकर तेरा पूर्व जन्मसे चला आया यह स्नेह उत्पन्न हो गया है वह स्वाभाविक था क्योंकि धर्मीको समस्त धर्मात्माजनोंमें प्रेम होता है फिर जो पुत्र होकर धर्मात्मा है उनका तो कहना ही क्या है?

तदनन्तर देवकीने सन्तुष्ट होकर उन पुत्ररूप मुनियोंको नमस्कार किया तथा कृष्ण आदि समस्त यादवोंने नम्रीभूत होकर उनकी स्तुति की।

अंतमें ये छहों मुनि अपनी साधनाको पूर्ण करके उसी भवमें मुक्तिलक्ष्मीको प्राप्त हो गये।

# ज्ञानियों द्वारा देव-गुरुकी भक्ति

श्रीरामचन्द्रजी–लक्ष्मणजी व सीताजी अयोध्यासे वनवास जाते समय सीताके कारण धीरे-धीरे वन गमन करते हुए वंशधर पर्वतके अत्यन्त गहन वनमें पहुँचे। उस वनमें बांसके वृक्षोंकी बाहुल्यता थी। सघन वृक्षावलिके कारण मार्ग विषम हो रहा था। सूर्यका प्रकाश भी पृथ्वीपर न आने पाता था। श्रीराम और लक्ष्मण सीताको बीचमें किये धीरे-धीरे उस विषम पथको पार कर सन्ध्याके समय एक ग्रामके निकट पहुँचे। उस ग्रामके निवासीयोंको अत्यन्त घबडाये हुए भागते जाते देख श्रीरामने ग्राम छोड़कर भागनेका कारण पूछा। तब एक मनुष्यने कहा कि हे देव! आज तीसरा दिन है, रात्रिके समय इस पहाड़के ऊपर पृथ्वीको कम्पायमान करनेवाला अत्यन्त भयंकर और प्रचण्ड शब्द होता है उस शब्दसे औरोंकी तो बात क्या? सरोवरोंका जल भी चलायमान हो जाता है। अतएव इस पहाड़के आस-पासके नगरोंके निवासी उस भयंकर शब्दसे भयभीत हो संध्या होते ही ग्रामसे दूर चले जाते हैं और अत्यन्त व्याकुलता सहित कष्टसे रात्रि व्यतीत कर प्रातः नगरमें आकर अपना काम-धाम करने लगते हैं।

सीता उस वृद्धके वचन सुनकर हृदयमें कुछ भयभीत हो लक्ष्मणसे कहने लगी कि हे वीर! ऐसे समयमें जहाँ ये सब नगर-निवासी जा रहे हैं वहाँ पर हमको जाना उचित है। नीतिज्ञ पुरुष देश-कालके अनुसार ही पुरुषार्थ करते हैं। कदाचित् इसी कारणसे वे बड़ी-बड़ी

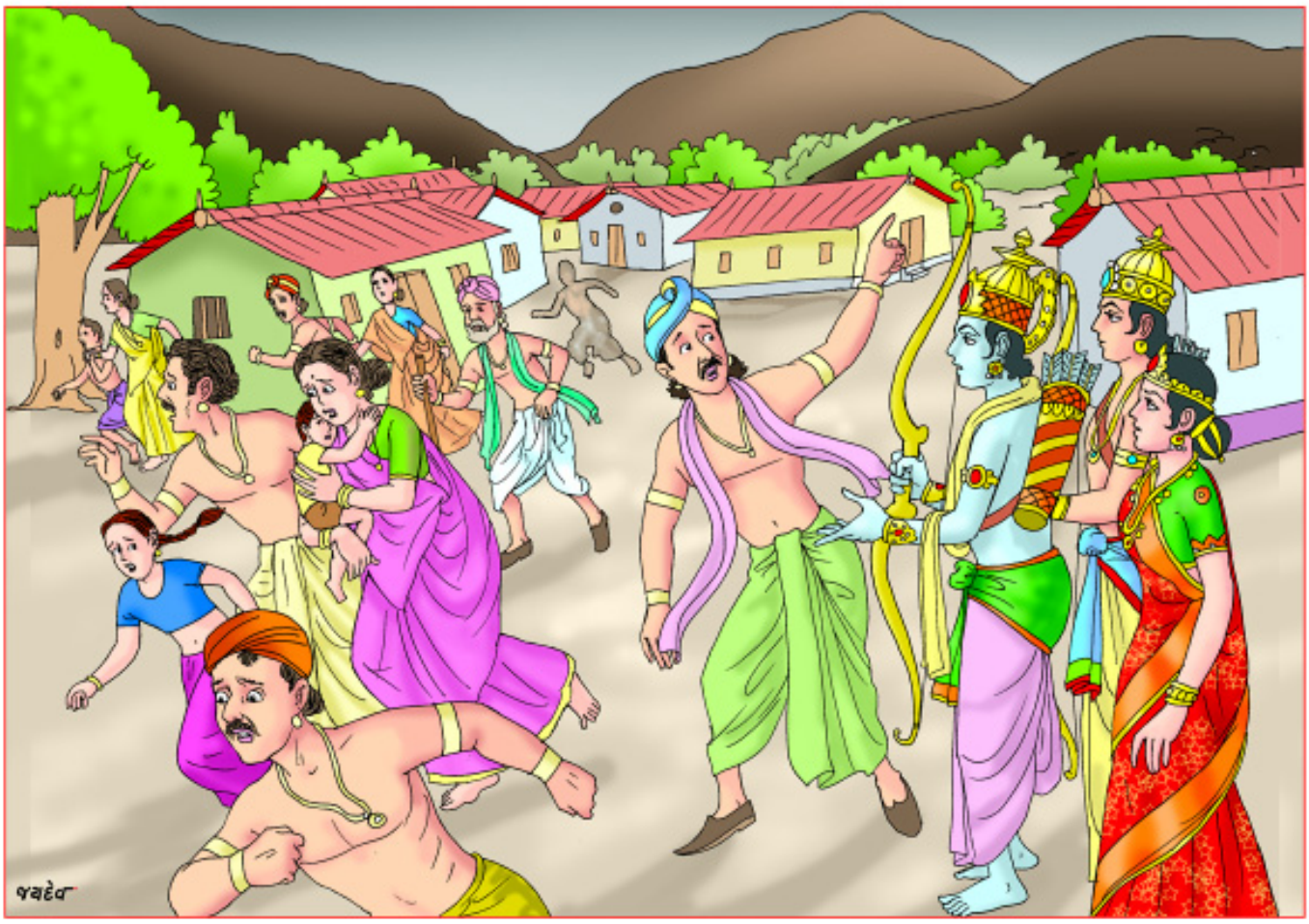

वंशस्थलके पाससे निकलते संध्या समय लोगोंको गाँव छोड भागते देख
श्रीराम एक व्यक्तिसे गाँव छोड भागने सम्बन्धित वार्तालाप करते हुए....।

आपत्तियोंसे बच भी जाते हैं। तब निर्भय श्रीराम हंस कर कहने लगे कि हे सीते! तुम भयभीत होकर कायर हो रही हो, अतएव तुम्हीं इन लोगोंके साथ आपदाशून्य सुरक्षित स्थानको चली जाओ। प्रभात होते ही इन्हींके साथ लौट आना। हम दोनों आज इसी पहाड़ पर जाकर रहेंगे और देखेंगे कि ऐसी भयंकर ध्वनि कौन किस कारण करता है? जिसके भयसे बेचारे नगर-निवासी घर-द्वार छोड़कर व्याकुल हो भागे भागे फिरते हैं। हमें इन लोगोंके समान कोई भय नहीं है। सीताने अत्यन्त नम्रतापूर्वक कहा कि हे नाथ! भला, आपका हठ निवारण करनेमें कौन समर्थ है? फिर तीनों उस पर्वत पर धीरे धीरे चढ़ने लगे। वे तिमिराच्छन्न कण्टकमय विषम मार्गको बड़ी सावधानीसे पारकर पर्वतके शिखर पर जा पहुँचे। वहाँ पर देशभूषण और कुलभूषण नामक महामुनि कायोत्सर्ग ध्यानारूढ थे। युगल मुनियोंको देख तीनोंने उन्हें भक्तिपूर्वक नमस्कार किया और भावार्द्रसह उन्हींके समीप बैठ गये।

थोड़ी देरमें रात्रिका सघन अन्धकार फैल गया। सब ओर काला ही काला दिखाई देने लगा। इसी समय एक महाबली असुरने अत्यन्त भयानक शब्द करना आरम्भ किया जिसे सुनकर पहाड़ परके जीव-जन्तु भयभीत हो इधर-उधर भागने लगे। सम्पूर्ण दिशाएँ प्रतिध्वनित हो उठीं। देखते-देखते अनेक मायामयी भयानक सर्प और बिच्छुओंसे मुनियोंका शरीर आच्छादित हो गया। यह देखकर सीता भयभीत हो श्रीरामसे लिपट गई। श्रीरामने उसे धैर्य बंधाकर मुनियोंके चरणोंके समीप बिठा दिया और दोनों भाई मुनियोंके शरीरसे सांप तथा बिच्छुओंको दूर हटाने लगे। असुरकी मायासे अत्यन्त भयानक भूतोंके समूह किलकारियाँ मारते हुए भयानक शब्द करने लगे। अनेकों राक्षस तथा मायामयी शाकिनी

पहाड पर देशभूषण-कुलभूषण मुनिको ध्यानमें देख राम-सीता-लक्ष्मण मुनिराजकी भक्ति, वंदना करते हुए...।

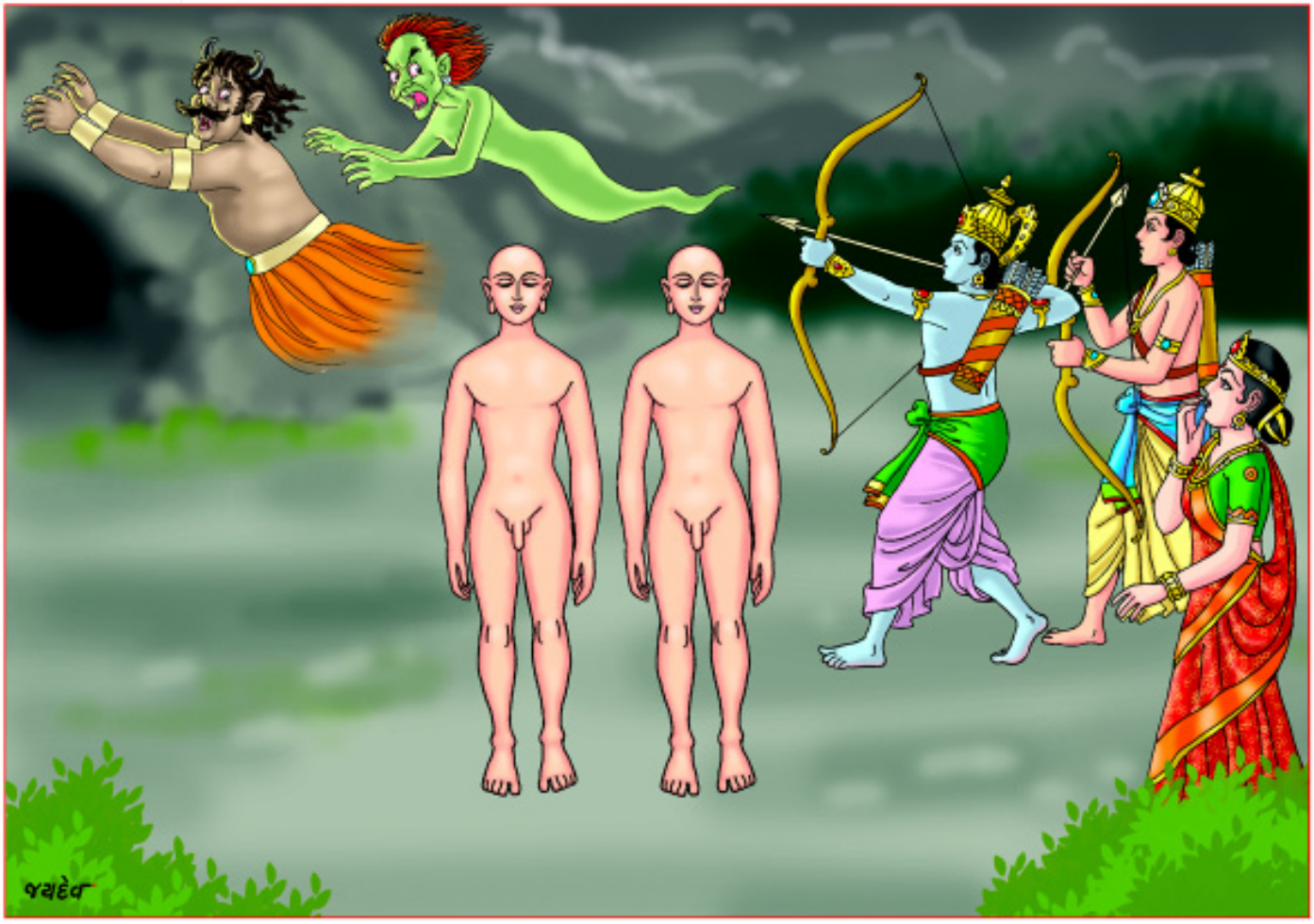

देषभूषण व कुलभूषण मुनियों पर महाबली असुर द्वारा किए उपसर्गको श्रीराम-लक्ष्मण दूर करते हुए...।

अपने भयानक मुखोंसे प्रचण्ड अग्नि-ज्वाला उगलने लगीं। भयानक पिसाचिनियाँ मृतक कलेवर लेकर नाचने-कूदने लगीं। दुर्गन्धयुक्त रक्तकी वर्षा होने लगी। भयानक डाकनियाँ आंतो और हड्डियोंके आभूषण पहिन नाना प्रकारके रूप धारण कर क्रूर शब्द करती हुई मुनियोंके आसपास नाचने लगीं। अत्यन्त भयानक शब्दसे समस्त पर्वत इस प्रकार कम्पायमान हो उठा मानों भूकम्प हो रहा हो। इस प्रकार असुरने अपने पूर्व-जन्मके बैरके कारण दोनों मुनियों पर घोर उपसर्ग किया। परन्तु धीर-वीर दोनों मुनि ध्यानसे किंचित् भी चलायमान न हुए।

श्रीराम-लक्ष्मण अत्यन्त क्रोधित हो धनुष-बाण लेकर मेघ सदृश गर्जना करते हुए खड़े हो गये। उनके धनुषोंकी प्रत्यंचाके शब्दसे मानों वज्रपातसा हुआ। वह असुर उन्हें बलभद्र तथा नारायण समझ अपनी मायाको संकोच, डर कर भाग गया। असुरकृत उपसर्ग दूर होते ही मुनियोंको शुक्लध्यानकी सिद्धि हुई तथा केवलज्ञान प्राप्त हुआ। चतुर्निकायके देवोंने आकर गन्धकुटीकी रचना की जिसमें दिन और रातका कोई भेद न रहा। श्रीराम-लक्ष्मण सीता सहित देव और विद्याधरोंने देशभूषण तथा कुलभूषण केवलीयोंकी भक्तिपूर्वक पूजा की फिर सब अपने-अपने स्थान पर बैठ गये।

श्रीरामने दोनों हाथ जोड़कर शिर नवाकर केवली भगवानसे पूछा कि हे देव! असुरने किस कारण आप पर घोर उपसर्ग किया? तब केवली भगवानकी दिव्यध्वनि हुई :—एक समय पद्मनी नामक नगरमें विजयपर्वत नामक एक अत्यन्त धर्मात्मा राजा राज्य करता था। उसकी रानीका नाम धारणी था। उस राजाका अमृतसुर नामक एक अत्यन्त बुद्धिमान दूत था। उसकी स्त्री उपभोगकी कुक्षिसे उदित और

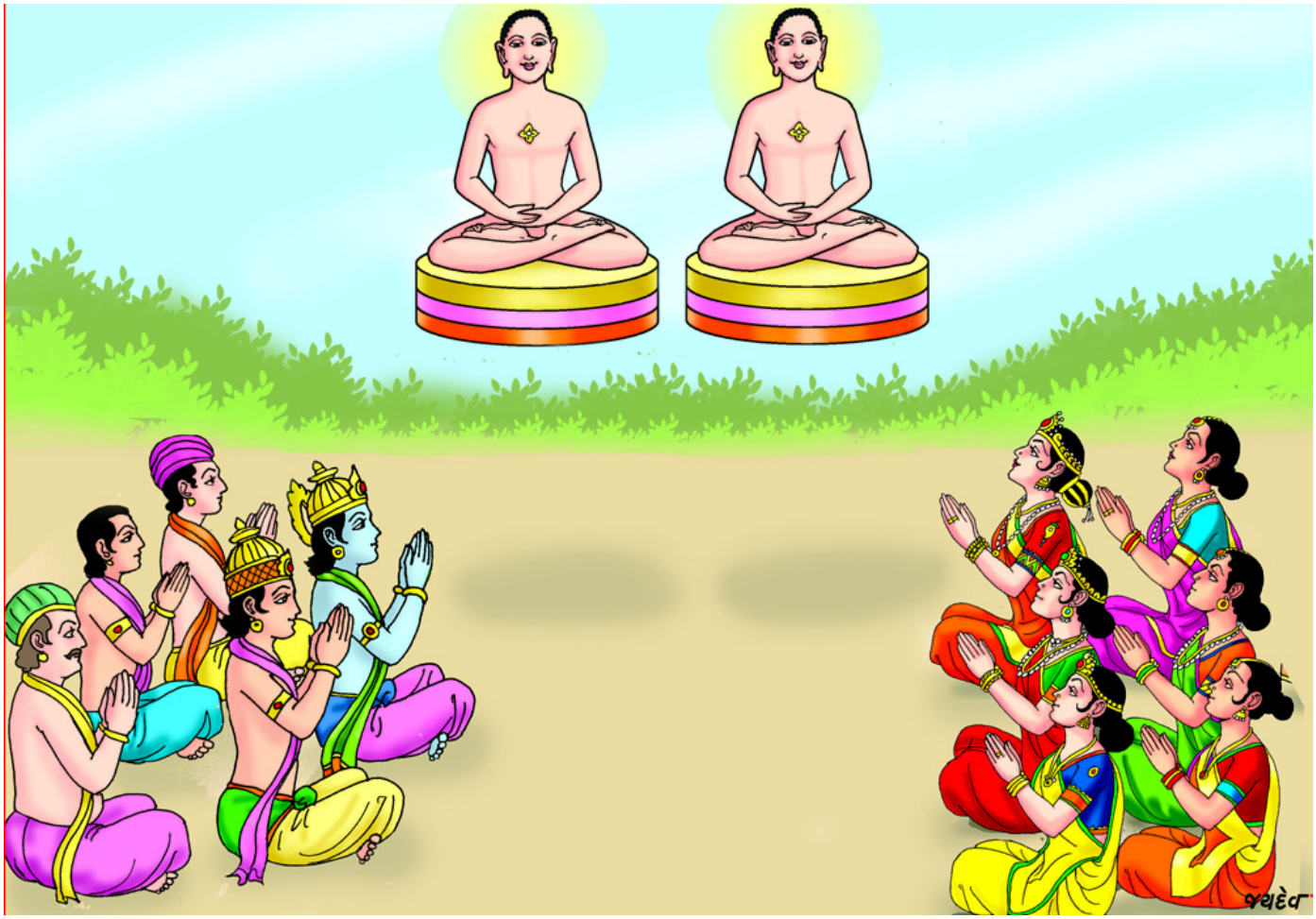

देशभूषण-कुलभूषण केवलीकी सभामें राम-लक्ष्मण प्रश्न पूछते हुए...।

मुदित नामक दो योग्य पुत्र हुए। ये बहुत ही गुणवान, सुन्दर और धर्मात्मा थे।

एक बार राजा विजयपर्वतने अमृतसुरको किसी कार्यवश परदेश भेजा। अमृतसुर अपने मित्र वसुभूतिको साथ लेकर स्वामीका कार्य करने लगा। वसुभूति दुष्टात्मा और पापी था। उसका अमृतसुरकी पत्नीसे अनुचित सम्बन्ध था। दुष्ट वसुभूतिने अच्छा अवसर देख मार्गमें अमृतसुरको मार डाला और आप नगरमें वापिस लौट आया। उसने अमृतसुरके मारनेका समस्त वृत्तान्त उपभोगको सुना दिया, जिसे सुनकर दुष्टा उपभोगको बड़ी प्रसन्नता हुई और उसने कहा कि अपने सुखके मार्गमें उदित और मुदित ये दोनों पुत्र कण्टक स्वरूप हैं। यदि तुम दोनोंको मार डालो, तो फिर मैं और तुम दोनों निःशंक हो स्वतन्त्रतापूर्वक जीवनपर्यन्त सुख भोग सकेंगे। दुष्टा उपभोगकी यह समस्त वार्ता उदितकी स्त्रीने सुन ली। उसने तत्काल अपने पति (उदित)को यह सब वृत्तान्त सुना दिया। उदितने अपने भाई मुदितको सावधान कर दिया। अवसर पाकर एक दिन उदितने वसुभूतिको मार डाला। परदारा सेवी, पापी वसुभूति मरकर एक चाण्डालके घर उत्पन्न हुआ।

एक दिन दोनों भाई उदित और मुदित राजा विजयपर्वतके साथ मुनिके दर्शनार्थ वनको गये। वहाँ मुनिके मुखारविन्दसे दयामयी अहिंसा धर्मका उपदेश श्रवण कर दोनों भाईयोंने मुनि-दीक्षा ले ली और गहन वनमें अत्यन्त दुर्द्धर तप करने लगे।

एक दिन उदित और मुदित दोनों मुनि कायोत्सर्ग ध्यानस्थ थे तब देव संयोगसे वसुभूतिका जीव जो चाण्डाल हुआ था उसी वनमें

शिकार खेलता हुआ आ निकला और दोनों मुनियोंको देख अपने पूर्वभवके वैरके प्रभावसे अत्यन्त क्रुद्ध होकर बाणसे उनका घात करनेको तत्पर हुआ। यह देख उसके स्वामीने उसे मना किया। इस प्रकार मुनियोंकी रक्षा हुई। कुछ काल तप कर दोनों मुनि समाधिमरण कर स्वर्गमें उत्तम देव हुए, फिर वहाँसे चयकर राजा प्रियव्रतकी रानी पद्मावतीसे रत्नरथ और विचित्ररथ नामक पुत्र हुए फिर मुनि-व्रत धारण कर स्वर्ग गये और वहाँसे चयकर सिद्धार्थ नगरके राजा क्षेमंकरकी रानी विमलासे हम दोनों भाई देशभूषण और कुलभूषण हुए हैं।

एक समय जब हम दोनों भाई विद्याभ्यास कर लम्बेकालके बाद लौटे और महेलमें प्रवेश किया तब झरोखेमें अपनी बहिन कमलोत्सवाको बैठी देख विकारचित्त हुए और उसे पानेके लिए हम दोनों इर्षावश परस्पर लड़ने लगे। पीछे जब यह ज्ञात हुआ कि कमलोत्सवा तो हमारी पूज्य भगिनी है तब हम दोनों अत्यन्त लज्जित हुए तथा संसारकी विकारयुक्तदशा देख हमें संसारसे वैराग्य उत्पन्न हुआ और हम दोनों गृह-त्याग कर मुनि हुए। हम दोनोंने वनमें घोर तप किया। फलतः हम दोनोंको आकाशगामिनी ऋद्धि प्रगट हुई जिसके प्रभावसे हमने अनेक तीर्थोंमें विहार कर भगवानके चैत्यालयोंकी बन्दना की। हमारे पिता क्षेमंकर जो पूर्व-जन्मके भी पिता थे हमारे शोकसे मरण कर भवनवासी देवोंके अधिपति गरुडेन्द्र हुए जो कि इसी सभामें बिराजमान हैं।

श्रीरामने फिर पूछा कि हे देव! उस चाण्डालके स्वामीने उदित और मुदित नामक मुनियोंको किस प्रीतिके कारण बचाया? तब केवली भगवानकी दिव्यध्वनि हुई कि :—

एक समय यक्षस्थान नामक ग्राममें सुरप और कर्षक नामके दो भाई थे। एक दिन एक पारधी एक जीवित पक्षी पकड़कर उस ग्राममें लाया था। दोनों भाईयोंने दयाकर पारधीको द्रव्य दे पक्षीको जीवीत छुड़वा दिया था। वह पक्षी आयु पूर्ण कर म्लेच्छाधिपति (चाण्डालका स्वामी) हुआ तथा सुरप और कर्षक भी मरण कर उदित और मुदित हुए। सुरप और कर्षकने पक्षीके प्राण बचाये थे। अतएव उस पक्षीने म्लेच्छाधिपतिके जन्ममें उदित और मुदितको चाण्डालके हाथोंसे मरनेसे बचाया। जो जिसके साथ भलाई करता है वह जन्म-जन्मान्तरमें उसकी भलाई करता है। इसके विपरीत जो बुराई करता है वह जन्म-जन्मान्तरमें उसकी बुराई करता है, संसारी जीवोंकी यही दशा है। अतएव सबको परोपकार करना चाहिए। जीव-दया ही मोक्षका मार्ग है।

वसुभूतिका जीव जो चाण्डाल हुआ था अनेक कुयोनियोंमें भ्रमण करता हुआ तापसीका व्रत ले अज्ञान तप करने लगा और आयु पूर्णकर मरकर अग्निकेतु नामक अत्यन्त क्रूर ज्योतिषी देव हुआ। वहाँसे मरकर मनुष्य हुआ। उसका और हमारे बहुत भवोंसे बैर चला आ रहा था। वह अनेक भवोंमें भ्रमण कर दुःखी होता हुआ अज्ञान तप कर मर कर ज्योतिषी देवोंमें अग्निप्रभ नामक देव हुआ। एक दिन अग्निप्रभ अनंतवीर्य केवलीकी वन्दनाको गया, वहां उसने केवली भगवानसे पूछा कि हे देव! आपके पश्चात् कौन केवली होगा? तब केवलीने कहा कि मेरे उपरान्त देशभूषण और कुलभूषण केवली होंगे। एक दिन उस देवने विभंगज्ञानसे विचार किया कि देशभूषण और कुलभूषण इस समय कहाँ है? उस ज्ञानके उपयोगसे उसने हमें इस पर्वत पर ध्यानारूढ जान लिया। हमसे उसका पूर्वजन्मोंका बैर चला आता था। केवलीके वचनको

असत्य करनेकी इच्छासे उसने प्रतिदिन रात्रिको हम पर घोर उपसर्ग करना प्रारम्भ कर दिया ताकि हमें केवल्य की उपलब्धि न हो सके।

जब तुम इस पर्वत पर आये और उसने तुम्हें बलभद्र और नारायण जाना तब वह भयभीत हो उपद्रव करना छोड़कर भाग गया। इस समय वह हमारी वन्दनार्थ सभामें बैठा है। हमारे ध्यानकी स्थिरतासे शुक्लध्यान प्रकट हुआ तथा घातिया कर्मोंका पूर्ण क्षय हुआ। हे राम! तुम चरमशरीरी मोक्षगामी एवं बलभद्र हो तथा लक्ष्मण नारायण हैं। तुम्हारे निमित्तसे हमारा उपसर्ग दूर हुआ तथा केवलज्ञानकी प्राप्ति हुई। प्राणियोंके परस्पर बैरका मूल हेतु पूर्वका बैरानुबन्ध है ऐसा जानकर जीवोंको पारस्परिक द्वेषका त्याग करना चाहिए। अग्निप्रभ जो वहीं सभामें बैठा था, केवलीके मुखसे पूर्व बैरका कारण सुन बहुत ही भयभीत हुआ और भगवानको भक्तिपूर्वक नमस्कार कर अपने स्थानको चला गया।

केवली भगवानके पिताका जीव जो गरुड़ेन्द्र हुआ था श्रीरामसे कहने लगा कि भव्योत्तम! तुमने जो मुनियोंका उपसर्ग निवारण किया इससे मैं बहुत ही प्रसन्न हूँ। तुम जो मांगो वही तुमको दूँ। तब श्रीरामने अत्यन्त विनयपूर्वक कहा कि तुम भवनवासी देवोंके अधिपति हो यदि कभी हम पर आपत्ति पड़े तो उस समय तुम हमारी सहायता करना। श्री गरुडेन्द्रने श्रीरामके वचन प्रमाण किए। फिर केवली भगवानको नमस्कार कर अपने-अपने स्थान पर चले गये। श्रीरामने कुछ काल तक इसी वंशगिरिके शिखर पर रहनेका विचार किया।

वंशस्थलपुरके राजा सुप्रभने केवली भगवानके मुखसे श्रीरामको चरमशरीरी, मोक्षगामी सुनकर उन्हें प्रणाम कर उनसे अपने नगर

श्रीरामने वंशगिरि पर्वत पर अनेक मंदिर बनवाये उनमेंसे
एक मन्दिरमें राम-लक्ष्मण-सीता दर्शनादि करते हुए....।

चलनेकी प्रार्थना की, परन्तु श्रीरामने कुछ काल यहीं ठहरनेका निश्चय किया। अतएव सुरप्रभने उनके ठहरनेकी उत्तमोत्तम व्यवस्था कर दी। जिससे श्रीराम लक्ष्मण और सीताको किसी भी प्रकारकी कोई त्रुटि तथा अड़चन न हुई। इस प्रकार श्रीराम-लक्ष्मण सीता सहित वंशगिरिके शिखर पर बहुत दिनों तक सुखपूर्वक रहे।

एक दिन श्रीरामचंद्र लक्ष्मणसे कहने लगे कि हे भाई! इस शैल-शिखरपर रहते हमें बहुत समय बीत गया। राजा सुरप्रभने भी हमारी खूब सेवा की, परन्तु हमारा मन तो इन सांसारिक भोगोंसे प्रसन्न नहीं। जब तक संयमका उदय नहीं है तबतक प्राणियोंको ये भोग सर्वदा घेरे ही रहेंगे। यह सब पूर्वोपार्जित शुभ कर्मका ही फल है। यथार्थमें तो आत्मकल्याण ही सर्वश्रेष्ठ है। हमारा विचार हे कि यहाँसे दण्डक-वन बिलकुल समीप सुना जाता है वहाँ भूमिगोचरीयोंका भी विशेष आवागमन नहीं और न वहाँ भरतकी आज्ञाका प्रवेश है। वहीं समुद्रके तट पर निवासस्थान बनाना योग्य है। लक्ष्मणने कहा कि देव! आपकी जैसी इच्छा हो! श्रीराम यह मंत्रणा कर दूसरे दिन लक्ष्मण तथा सीता सहित दंडक वनकी ओर चले। राजा सुरप्रभ इनका गमन सुनकर पीछे-पीछे चलने लगा। श्रीरामने राजाको बड़ी कठिनाईसे पीछे लौटाया।

वंशगिरि पर श्रीरामने भगवानके अनेकों सुन्दर चैत्यालय बनवाये थे अतएव वह गिरि उस समयसे रामगिरिके नामसे प्रसिद्ध हो गया। आजकल यह स्थल रामटेकके नामसे प्रसिद्ध है तथा देशभूषण एवं कुलभूषण मुनियोंकी निर्वाणभूमि कुन्थलगिरि पर्वत पर है।

# सीमंधर भगवानका तपकल्याणक महोत्सव

एक दिन राजा दशरथ महा तेजप्रतापसे सभामें बिराजते थे। सुरेन्द्र समान उनका वैभव था। जिनेन्द्र भगवानमें उनका मन आसक्त था। उस समय अपने शरीरके तेजसे आकाशमें उद्योत करते नारद आये। नारदको दूरसे ही देखकर राजा उठकर सामने गये और बहुत सन्मानपूर्वक नारदको लाकर सिंहासन पर बिठाया। राजाने नारदकी कुशलता पूछी।

नारदने कहा कि जिनेन्द्रदेवकी कृपासे सब कुशल है। फिर नारदने राजाकी कुशलता पूछी। राजाने कहा, देव-गुरु-धर्मकी कृपासे सब कुशल है। राजाने नारदसे पूछा, प्रभु आप कौनसे स्थानसे पधारे हैं? इन दिनों कहाँ कहाँ विहार किया? क्या देखा? क्या सुना? क्योंकि आपसे ढाई द्वीपमें कुछ भी अज्ञात नहीं है।

नारदने कहा, हे राजन्! मैं महाविदेहक्षेत्रमें गया था। वह क्षेत्र उत्तम जीवोंसे भरा हुआ है। जगह-जगह पर मुनिराज बिराजते हैं, वहाँ धर्मका उद्योत सर्वत्र बहुत हो रहा है। श्री तीर्थंकर, चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव, प्रतिवासुदेव आदि उपजते हैं। वहाँ पुंडरिकिणी नगरीमें सीमंधरस्वामीको कुछ कालतक राज्य विभूतिका भोग कर लेनेके पश्चात् एक दिन कोई कारण पाकर वैराग्य उत्पन्न हुआ और प्रभु दीक्षा लेने उद्धत हुए। उस समय ब्रह्म स्वर्गसे लौकान्तिक देव भी आकर उनको वैराग्यवर्धक अनुमोदन करते हैं। नियोगके कारण इन्द्र उनका अभिषेक करके उन्हें वस्त्राभूषणसे अलंकृत करते हैं। कुबेर द्वारा निर्मित पालकीमें

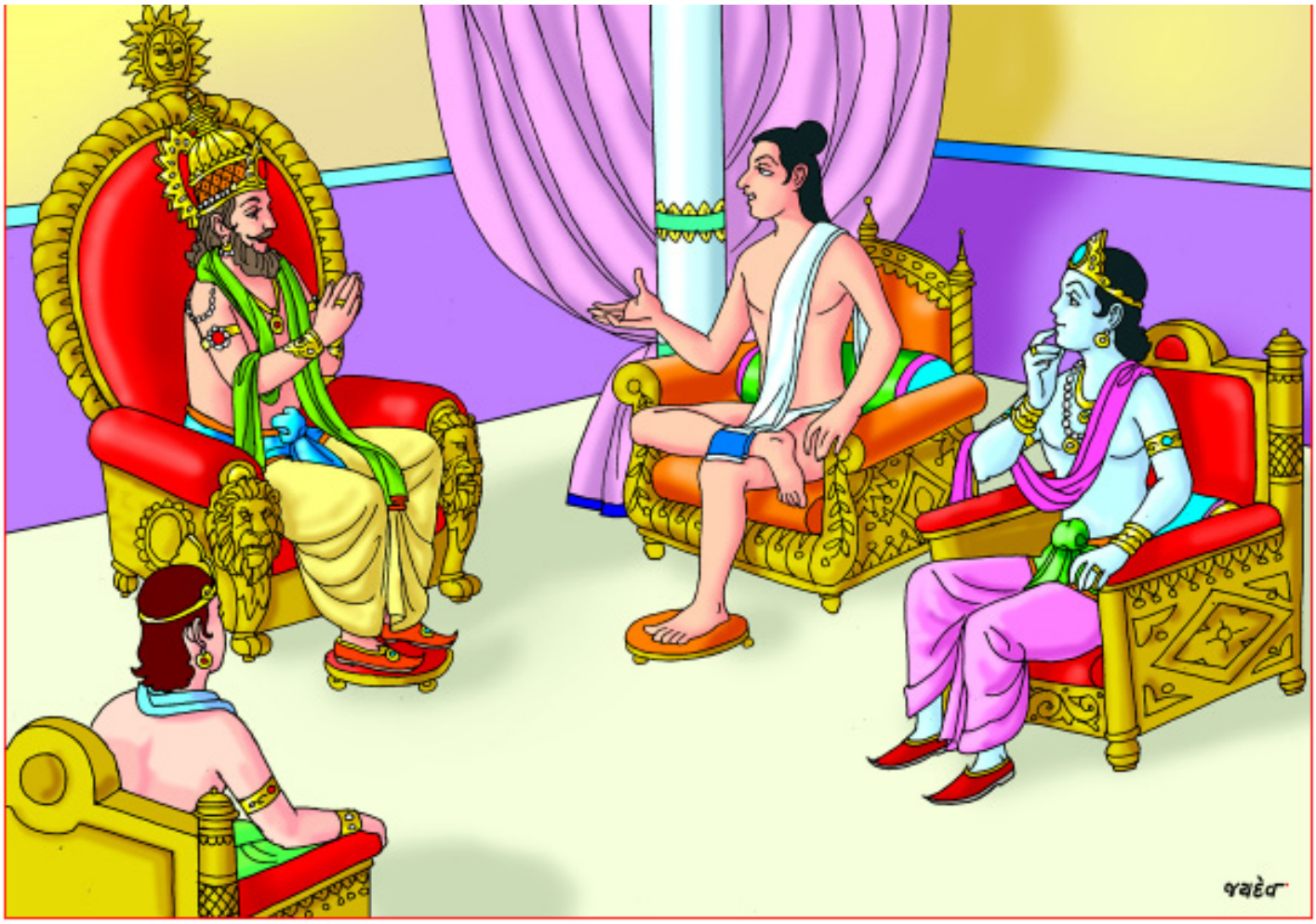

राजा दशरथ नारदको आता देख, उन्हें आदरसहित उच्च स्थान प्रदान करते हैं साथमें राम-लक्ष्मण भी बैठे हुए हैं ।

भगवान् विराजमान हुए। इस पालकीको पहले तो मनुष्य कन्धों पर लेकर कुछ दूर पृथ्वी पर चले और फिर देवलोग आकाशमार्गसे तपोवनमें ले चले। तपोवनमें पहुँचकर भगवान् वस्त्रालंकारका त्यागकर केशोंका लुंचन कर दिगम्बर मुद्रा धारण कर लेते हैं। अन्य भी अनेकों राजा उनके साथ दीक्षा धारण करते हैं। इन्द्र प्रभुके केशलोंचसे निकले केशोंको एक मणिमय पिटारेमें रखकर क्षीरसागरमें क्षेपण करते हैं। उसी समयसे वह दीक्षास्थान तीर्थ स्थान बन जाता है। भगवान् बेला तेला आदिके नियमपूर्वक 'ॐ नमः सिद्धेभ्यः' कहकर स्वयं दीक्षा ले लेते हैं क्योंकि वे स्वयं जगद्गुरु हैं। मैने प्रभुको उपवासका नियम पूरा होने पर तीर्थंकर मुनिराजको आहारार्थ नगरमें जाते देखा और यथाविधि

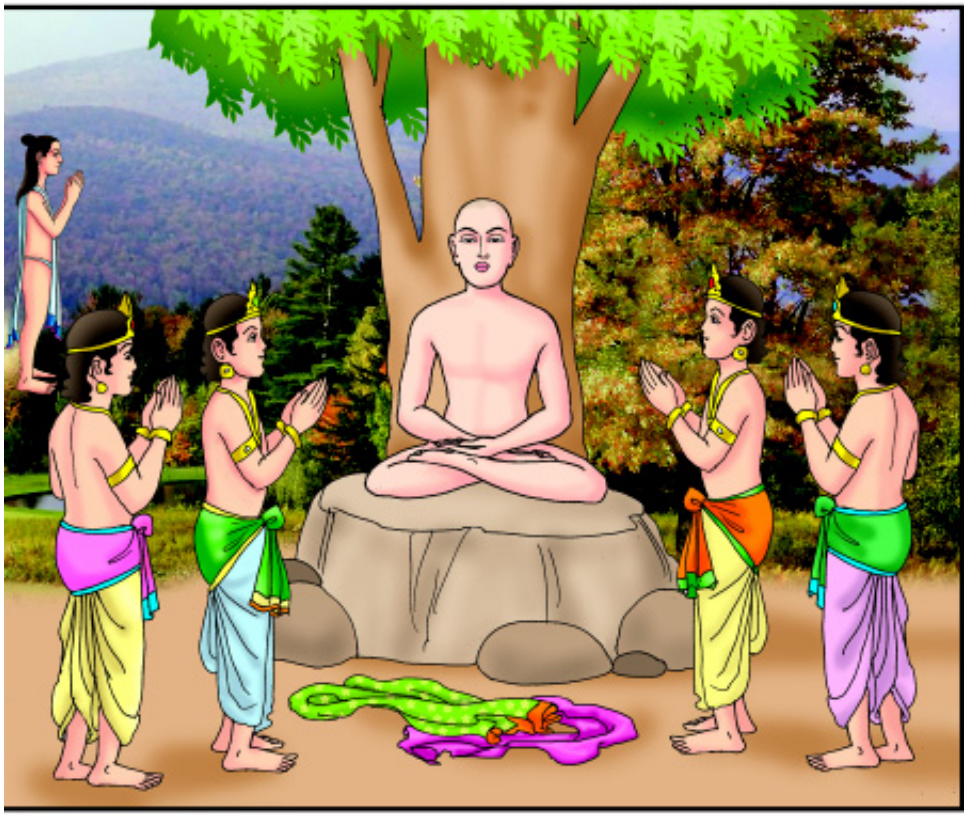

देवों द्वारा मनाये गये सीमंधर भगवानके तपकल्याणक उत्सवको निहारते हुए नारद...।

आहार ग्रहण करते भी देखा। दातारके घर पंचाश्चर्य प्रकट होते भी देखे। इस भांति सीमंधर प्रभुका तपकल्याणकका उत्सव देखा। पुंडरिकिणी नगरी भात-भातके रत्न-महलोंसे प्रकाशित है। सीमंधर स्वामीके तपकल्याणकमें विविध प्रकारके देवोंका आगमन हुआ था। उनके भात-भातके विमान, ध्वजा, छत्रादिसे अत्यंत शोभित नगरी भरी हुई थी।

हमने जैसे श्री मुनिसुव्रतनाथका सुमेरु पर्वत पर जन्माभिषेक सुना है वैसे ही वहाँ लोकमुखसे मैंने सीमंधर भगवानके जन्माभिषेककी सुनी वह कहता हूँ। भगवान्का जन्म होने पर देवभवनों व स्वर्गों आदिमें स्वयं घंट आदि बजने लगते हैं और इन्द्रके आसन कम्पायमान हो जाते हैं जिससे उन्हें भगवान्के जन्मका निश्चय हो जाता है। सभी इन्द्र व देव भगवान्का जन्मोत्सव मनानेको बड़ी धूमधामसे पृथ्वी पर आते हैं। अहमिन्द्र जन अपने-अपने स्थान पर सात पग आगे जाकर भगवान्को परोक्ष नमस्कार करते हैं। दिक्कुमारी देवियाँ भगवान् बाल तीर्थंकरको दुलारती हैं तथा जातकर्म करती हैं, कुबेर नगरीकी अद्भुत शोभा करता है। इन्द्रकी आज्ञासे इन्द्राणी प्रसूतिगृहमें जाती है, माताको माया निद्रासे सुलाकर उसके पास एक मायामयी पुतला लिटा देती है और बालक भगवान्को लाकर इन्द्रकी गोदमें देती है, जो भगवानका सौन्दर्य देखनेके लिए 1000 नेत्र बनाकर भी संतुष्ट नहीं होता। फिर ऐरावत हाथीपर भगवान्को लेकर इन्द्र सुमेरुपर्वतकी ओर चलता है। वहाँ पहुँचकर पाण्डुक शिलापर, भगवान्का क्षीरसागरसे देवों द्वारा लाये गये जलके 1008 कलशों द्वारा अभिषेक करता है। तदनन्तर बालकको शचि इन्द्राणी द्वारा वस्त्राभूषणसे अलंकृत कर इन्द्र नगरमें देवों सहित महान् उत्सवके साथ प्रवेश करता है। बालकके अंगूठेमें अमृत होता है और इन्द्र ताण्डव नृत्य आदि अनेक मायामयी आश्चर्यकारी लीलाएँ प्रकट कर

देवलोकको लौट जाता है। दिक्कुमारी देवियाँ भी अपने-अपने स्थानों पर चली जाती हैं।

वैसा ही श्री सीमंधरस्वामीका जन्माभिषेकके उत्सव सम्बन्धमें मैंने सुना और तपकल्याणकका उत्सव तो मैंने प्रत्यक्ष देखा है। भिन्न-भिन्न प्रकारके रत्नजड़ित जिनमंदिर देखे कि जहाँ महामनोहर भगवानके बड़े-बड़े बिम्ब विराजित हैं और वहाँ विधिपूर्वक निरन्तर पूजा होती है।

हे राजन् महाविदेहसे मैं सुमेरु पर्वत पर आया। सुमेरुकी प्रदक्षिणा की। सुमेरुके ऊपर वनमें भगवानके जो अकृत्रिम चैत्यालय हैं, उनके दर्शन किए। उसका दृश्य भी अद्भुत है उसका संक्षिप्त वर्णन सुनकर आप आनन्दित होंगे।

इस जम्बूद्वीपके बिलकुल मध्यमें 99000 योजन ऊँचाई व नींवकी गहराई 1000 योजन मिलकर एक लाख योजन ऊँचाई प्रमाण 'सुदर्शन' नामा मेरु पर्वत है। इसके भूभागमें 'भद्रशाल वन' है, उसके ऊपर क्रमशः 'नंदनवन', 'सौमनस वन', 'पाण्डुकवन' है। इन प्रत्येक वनोंमें, चारों दिशाओंमें चार विशाल अकृत्रिम (शाश्वत) जिनमंदिर हैं, व उन प्रत्येकमें अकृत्रिम विशाल जिनप्रतिमाएँ हैं, इस तरह सुदर्शन मेरुके 16 जिनमंदिर हैं। पाण्डुक वनके 4 विदिशाओंमें अर्धचन्द्राकार 4 पाण्डुक शिलाएँ होती हैं। उन शिलाओं पर भरत, पूर्व विदेह, ऐरावत व पश्चिम विदेहक्षेत्रके तीर्थंकरोंका इन्द्रादि जन्माभिषेक करते हैं। इस भांति वह मेरु एवं वन तीर्थंकरोंके जन्माभिषेकसे पवित्र है।

सुमेरु पर्वतसे छूकर नील व निषध पर्वतको छूते हुए हाथीके बाह्य दांतोंके समान 'गजदंत' नामक चार पर्वत हैं। इन चारों पर्वत पर सुमेरु पर्वतके नजदीक एक एक अकृत्रिम (शाश्वत) जिनमंदिर स्थित है। नील पर्वतके पास पूर्वविदेहके उत्तरकुरुमें एक 'जम्बू' नामक पृथ्वीकायिक वृक्ष है। उसी भांति निषध पर्वतके पास 'देवकुरु'में

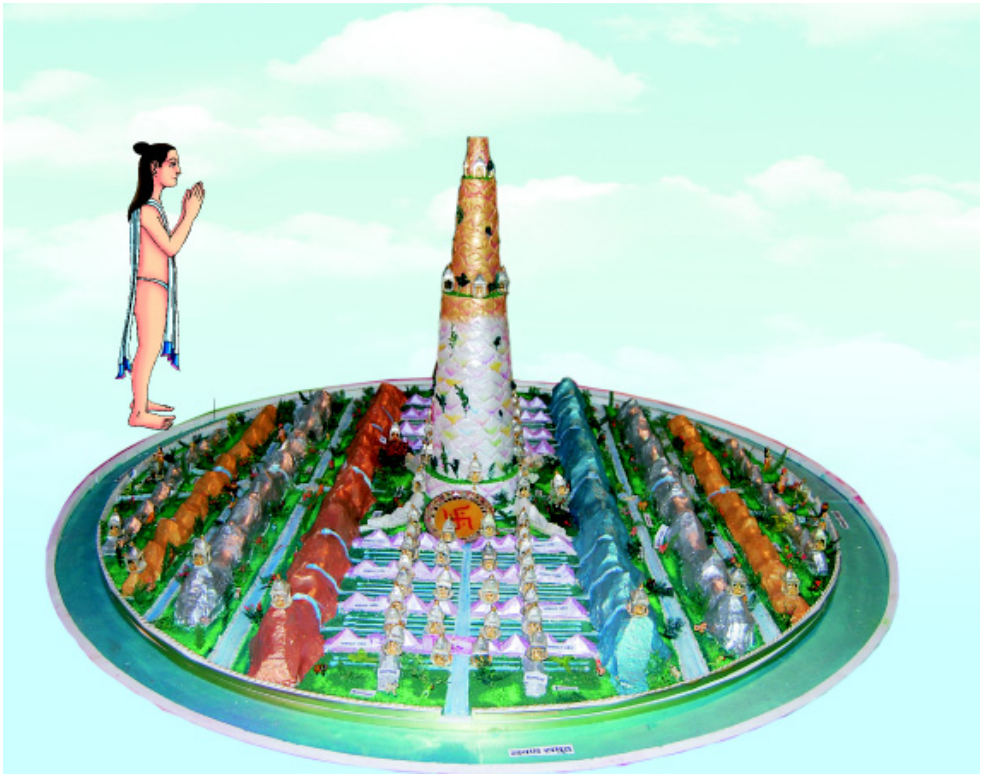

सुदर्शन मेरु व जम्बूद्वीपके वैभवको निहारते हुए नारद...।

'शाल्मलि' नामक पृथ्वीकायिक वृक्ष है। इन पर भी एक-एक अकृत्रिम (शाश्वत) जिनमंदिर है। सुदर्शन मेरुकी उत्तरदिशामें 'उत्तरकुरु' तथा दक्षिणदिशामें 'देवकुरु' उत्तम भोगभूमियाँ हैं।

इस द्वीपमें भरतवर्ष, हैमवतवर्ष, हरिवर्ष, विदेहवर्ष, रम्यकवर्ष, हैरण्यवर्ष और ऐरावत वर्ष—नामक सात क्षेत्र हैं। उन क्षेत्रोंको विभाजित करनेवाले, लवणसमुद्रको छूते हुए, पूर्व-पश्चिम लम्बे ऐसे हिमवान्, महाहिमवान्, निषध, नील, रुक्मि व शिखरी ये छ 'वर्षधर' या 'कुलाचल' पर्वत हैं। ये पर्वत क्रमसे सोना, चांदी, तपाया हुआ सोना, वैडूर्यमणि, चांदी और सोना—ऐसे रंगवाले होते हैं। इन 'कुलाचल' पर्वतों पर क्रमसे पद्म, महापद्म, तिगिंछ, केसरि, महापुण्डरीक और पुण्डरीक बड़े द्रह–तालाब हैं। इन तालाबोंमें प्रथम एक योजनका कमल

है। इसके चारों ओर भी अनेक कमल हैं। इन तालाब और कमलोंका विस्तार उत्तरोत्तर दूना है। इन कमलोंपर 'श्री', 'ह्री' आदि देवियाँ अपने अपने सामानिक आदि परिवार देवोंके साथ रहती हैं। प्रत्येक कुलाचल–पर्वतपर अनेक कूट होते हैं। उनके सिद्धकूट पर–एक 'सिद्धायतन' अकृत्रिम (शाश्वत) जिनालय होता है।

हे राजन्! नंदनवनके विविध प्रकारके रत्नजड़ित अतिरमणीय चैत्यालय मैंने देखे वहाँ पूजा की। स्वर्णके पीतरंगी चैत्यालय अति दीप्यमान हैं, सुन्दर मोतीयोंका हार और तोरण वहाँ शोभित है। जिनमंदिर देखते जैसे सूर्यके मंदिर लगते है। चैत्यालयकी भीत वैडूर्यमणिमय मैंने देखी। उसमें हाथी, सिंहादिरूप अनेक चित्र मंडित हैं। वहाँ देव-देवी संगीतसह नृत्य कर रहे हैं।

देवारण्य वनमें चैत्यालय तथा जिनप्रतिमाओंके दर्शन किये। कुलाचलोंके शिखरों पर मैंने जिनेन्द्रके चैत्यालय देखे। सभी चैत्यालय अतिव सुंदर व मनहारी थे। प्रत्येकमें 108 जिनेन्द्र अकृत्रिम-शाश्वत जिनप्रतिमाएँ समवसरण सादृश्य हैं। सभी प्रतिमाएँ ऐसी मनोहर है कि जैसे मानों अभी उनकी दिव्यध्वनि खिरेगी। यह सब देख उन मंदिरोंमें ही भक्ति, पूजा दिन-रात करनेके भाव हो आते थे। वहाँ कई मुनि भगवंतोंके भी दर्शन हुए थे

ऐसा सुन राजा दशरथ भक्तिसे बोल उठे श्री सीमंधर भगवानके मंगलमय दीक्षाकल्याणककी जय हो!, सर्व अकृत्रिम जिनालयमें बिराजमान शाश्वत जिनेन्द्र भगवंतोंकी जय हो!, जंबूद्वीप स्थित सर्व अकृत्रिम जिनालयकी जय हो!

(स्वर्णपुरीमें सुदर्शन मेरु व जम्बूद्वीपकी ऐसी ही रचना होनेवाली है।)

स्वानुभूति तीर्थ स्वर्णमें छाया हर्ष अपार,
मेरु जम्बूद्वीपकी रचना मंगलकार।
गुरुवर कहान प्रतापसे, श्री जिनवृंद महान,
मंगल मंगल सर्वदा, मंगलमय गुरुराज।
सुधाशीष बरसा रही, भगवती चंपा मात,
मुक्तिपथ गामी बनूँ, मुझ अंतर अभिलाष॥

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - 364250

**अध्यात्म अतिशयक्षेत्र सोनगढ़**

Dist : Bhavnagar (Gujrat)

**website :www.kanjiswami.org**

**Email : contact@kanjiswami.org**

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250